लाला जी बसे हृदय में

(संस्मरण संकलन)

प्रकाशक
बस्तर पाति प्रकाशन,
साहित्य एवं कला समाज
सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर,
जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001

लाला जी बसे हृदय में

लाला जी बसे हृदय में

(संस्मरण संकलन)

कॉपीराइट : मूल लेखक व बस्तर पाति प्रकाशन

प्रकाशक : बस्तर पाति प्रकाशन,
साहित्य एवं कला समाज
सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर
जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001

मुखपृष्ठ : साभार इंटरनेट

टंकन : सनत कुमार जैन, जगदलपुर

मुद्रक : सन्मति प्रिन्टर्स, जगदलपुर

प्रथम संस्करणः 2023

कुल पृष्ठ : 110

मूल्य : 100 रूपये मात्र

लाला जी बसे हृदय में

लाला जी को
जो आज भी
बस्तर की इन हवाओं में
विचरण कर रहे हैं।

लाला जी बसे हृदय में

पाठकों से रूबरू

लाला जगदलपुरी जी से मेरा परिचय तब हुआ जब मैं अपने घर के बाहर बैठा था और मेरे चाचाजी ने बताया कि वो देख, वो जा रहे हैं यहां के सबसे बड़े कवि!

मेरे चाचाजी ने ऐसा इसलिये बताया क्योंकि मैं भी उस वक्त कुछ कविताएं लिख चुका था। वो दिन था जिस दिन से मेरा मन लालाजी से एकांत में बात करने को लालायित हो गया। मैं चाहता था कि उनसे मिल कर मैं अपनी कविताएं दिखाऊं, ठीक सभी कवियों की तरह मेरे मन में भी था कि मेरी कविताएं श्रेष्ठ हैं।

आखिर एक दिन उनका पीछा करता हुआ उनके घर का पता जान ही लिया। और अगले ही दिन अपनी सारी डायरियां लेकर उनके पास जा पहुंचा। उन्होंने मेरा अभिवादन स्वीकार किया और कुछ कविताएं तत्काल पढ़ीं और अन्य सभी कविताओं को कुछ दिनों में पढ़ने का वादा कर मुझे घर भेज दिया।

उनके कहे शब्द आज भी मुझे याद हैं कि –'अच्छा लिख रहे हो। लिखते रहना, चाहे कोई कुछ भी प्रतिक्रिया देता रहे।'

आज संपादन के दौरान समझ आता है कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा था। जैसा कि उन्होंने अपनी कविताओं लिखा भी है कि अधजल गगरी छलकत जाये। और अधजल गगरी ही सबसे ज्यादा, सबके सामने होती है।

खैर! बस्तर पाति का एक संग्रहणीय विशेषांक भी लालाजी पर केन्द्रीत प्रकाशित किया था। इसके बाद भी मन अतृप्त ही रहा। मैंने लगातार गोष्ठियों में लालाजी के बारे में अन्य लोगों से सुनता रहता था। कई बातें सुनाई पड़ती थीं। मेरे मन में विचार आया क्यों न लालाजी के बारे में अन्य लोगों के संस्मरणों की पुस्तक ही प्रकाशित कर ली जाये। ताकि भविष्य में इस पुस्तक के माध्यम से पाठकों के मध्य लालाजी जीवंत हो उठें।

जैसा कि ऐसा होता ही है कि मंथन करने से स्वादिष्ट घी मिलता ही है। आखिरकार लालाजी के संबंध में अनेक अज्ञात जानकारियां पाठकों तक

पहुंच रही हैं। किसी विषय पर लिखवाना किसी लेखक से दुनिया का सबसे कठिन कार्य होता है, ये बात एक संपादक से ज्यादा अच्छे से कोई भी नहीं समझ सकता है। लगभग एक वर्ष पूर्व लाला जी पर केन्द्रित संकलन के प्रकाशन की सूचना जारी की गयी थी और 14 अगस्त 23 को अंतिम आलेख प्राप्त हुआ।

खैर! अंत भला तो सब भला। इस संकलन के प्रकाशन का उद्देश्य था लाला जी के जीवन के बारे में जानने का प्रयास करना। उनकी लेखनी पर तो सदैव कलम चलती ही रहती है। उनके जीवन के कई दृश्य एक साथ रखकर पाठक के जेहन में लाला जी की जीवंत तस्वीर उकेरने की ये कोशिश कितनी सफल हुयी है ये आप सभी सुधि पाठक बतायेंगे। परन्तु एक संपादक के तौर पर मुझे संतुष्टि का अनुभव हो रहा है। हम सभी लाला जी के जीवन के अनेक पहलुओं को जान सकेंगे।

लाला जी के संबंध में सटीक जानकारियां निश्चित रूप से उनके समकालिन लेखकों को होगी। अतः मैंने विशेष रूप से श्री कृष्ण शुक्ल जी एवं श्री बंशीलाल विश्वकर्मा जी से निवेदन किया। मेरा निवेदन दोनों ने स्वीकार मुझे उपकृत किया। उन्होंने लाला जी के जीवन के संबंध में अनेक जानकारियां विस्तार से दीं।

जिन जिन के हृदय में लाला जी बसे हैं उन्होंने तत्काल कलम उठायी और अपने संस्मरणों को कलमबद्ध किया।

निश्चय ही आप सभी के संयुक्त प्रयासों से लाला जी हर नवीन लेखक के लिये इस पुस्तक के माध्यम से जीवंत होकर मिलेंगे। भविष्य में यह पुस्तक एक मील का पत्थर बनेगी। यह पुस्तक लाला जी के ग्रंथों पर डॉक्टरेट करने वालों के लिये अध्ययनग्रंथ बनेगी।

लाला जी के सभी शुभचिंतकों का हृदय से आभार!

सनत कुमार जैन
संपादक 'बस्तर पाति' हिन्दी त्रैमासिक
संपादक 'गुड़दुम' हल्बी–हिन्दी त्रैमासिक
अध्यक्ष एवं संयोजक, साहित्य एवं कला समाज
सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, दुर्गा चौक जगदलपुर
मो.–9425507942

लाला जी बसे हृदय में

नींव का गुमनाम पत्थर

जब हम जगदलपुर शहर में नौकरी के स्थानांतरण में पहुंचे तबसे ही हमें जानकारी मिली कि इस प्रकृति सम्पन्न संभाग में कोई प्रकृति प्रेमी लेखक है। जो ज्यादातर बस्तर के लिये ही जीता है। हमारा लेखक हृदय उनके बारे में जानने के लिये बेचैन हो उठा। जिस साहित्यकार से मुलाकात होती लाला जी के बारे में जानने की कोशिश करता। धीरे धीरे जो जानकारियां एकत्र हुयीं उससे लालाजी की तस्वीर और ज्यादा सम्मानीय होती गयी।

उनका सम्पूर्ण जीवन साहित्य लेखन के लिये समर्पित था। वे आदिम संस्कृति को जानने और लेखनबद्ध करने के लिये प्रयासरत रहे। उन्होंने बस्तर की लोकबोलियों के लेकर मात्र व्याकरण और शब्दकोष ही नहीं संकलित किया बल्कि उनके तीज त्योहारों को भी संकलित किया। वे प्रयोगवादी थे इसलिये हिन्दी की प्रसिद्ध कहानियों को स्थानीय बोलियों में अनुवाद करके पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशन हेतु भी भेजे।

हिन्दी की ग़ज़लों में तो उन्होंने गजब ही ढा दिया है। कबीर की तरह बड़ी बातों को सरल भाषा में कहने का सामर्थ्य लालाजी में था।

इतना सबकुछ होने के बाद भी लालाजी का गुमनाम सा जीवन, गुमनाम सा लेखन क्यों रह गया इस पर विचार करने की महती आवश्यकता है। बस्तर जैसे क्षेत्र में लेखन की नींव का पत्थर, पर इतना गुमनाम!

क्षेत्र के साहित्यकारों को, उनके लेखन को आगे लाने का प्रयास करते रहना होगा। वर्तमान दौर के चरित्रानुसार उनके लेखन पर लगातार बस्तर विश्वविद्यालय में शोध कार्य होते रहना चाहिये।

सरकार द्वारा उनके सम्मान में लाला जगदलपुरी सम्मान प्रदान करने का निर्णय लेकर और लाला जी के नाम पर जिला ग्रंथालय का नामकरण कर अपने कर्तव्य का ईमानदारी से निर्वहन किया है। आगे की जिम्मेदारी अब हमारी है।

इस अंक के प्रकाशन हेतु शुभकामनाएं। निश्चय ही यह अंक भविष्य में मील का पत्थर साबित होगा।

महेश्वर नारायण सिन्हा
बिलासपुर, मो.–9826124921

लाला जी बसे हृदय में

संस्मरण–क्रम

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ क्रमांक
01.	डॉ आरती बोरकर	001
02.	बी. एल. विश्वकर्मा	017
03.	लक्ष्मी नारायण पयोधि	022
04.	कृष्ण शुक्ल	028
05.	त्रिलोक महावर	032
06.	विजय सिंह	040
07.	बी0 एन0 आर0 नायडू	044
08.	अवधकिशोर शर्मा	051
09.	किरणलता वैद्य 'कठिन'	055
10.	विनय कुमार श्रीवास्तव	064
11.	नरेन्द्र पाढ़ी	081
12.	राजकुमार पाण्डेय	084
13.	डॉ सुषमा झा	089
14.	अमिता दुबे	091
15.	रीमा दीवान चड्ढा	094
16.	मोहिनी ठाकुर	096
17.	विपिन बिहारी दाश	098
18.	देवब्रत शर्मा	099
19.	मीरा आर्ची चौहान	101

लाला जी बसे हृदय में

लाला जगदलपुरी का परिचय

1.1. जन्म एवं शिक्षा–दीक्षा

लाला जी का राशि नाम 'संतलाल' है संत नाम से उनकी राशि कुंभ हुई। उनका घरेलू नाम 'हरिलाल' है, लेकिन घर में सब उन्हें प्यार से 'लाला' कहकर पुकारते हैं, यही नाम उनका अधिक प्रचलित हुआ। परिवार के वयोवृद्ध रामभक्त थे, उन्होंने लाला के आगे 'राम' जोड़ दिया था, परंतु यह अधिक समय तक न चल सका। लाला जी का पूरा नाम 'लाला राम श्रीवास्तव' है। सन् 1936 में लालाजी ने अपने नाम के आगे 'जगदलपुरी' शब्द जोड़कर साहित्यिक सफर आरंभ किया। लाला जी का मानना है कि "जिस नाम से किसी व्यक्ति की असली पहचान हो, वही उसकी सही पहचान होती है।"[1] इसलिए आज वे लाला जगदलपुरी के नाम से जाने जाते है। (अवकाश अंक देशबंधु)

लाला जी का जन्म 17 दिसम्बर 1920 को जगदलपुर, (बस्तर) में हुआ। जन्म से ही बस्तर में पले बढ़े। उन्होंने अपनी शिक्षा जगदलपुर के राजा रूद्रप्रताप देव स्कूल से की। लाला जी सामान्य मध्यवर्गीय परिवार से हैं, रहने को तो वो मालगुजार परिवार के थे, किंतु मालगुजारी नाम मात्र की रह गई थी। लाला जी के पिता का नाम 'रामलाल' श्रीवास्तव था, जो वन विभाग में क्लर्क थे। माता का नाम 'जीरा बाई' था। पिता ने पारिवारिक विवाद से घर को त्याग दिया था। साथ ही उनके दो भाई और बहन भी हैं, लाला जी इन सब में सबसे बड़े हैं, उनका जीवन सामान्य मध्यमवर्गीय परिवेश में व्यतीत हुआ है।

सन् 1944 में उनके पिता जी का देहांत हो गया, पिता के देहांत के बाद माताजी के ऊपर परिवार का सारा दायित्व आ गया। पिता जब जीवित थे, तभी घर त्यागकर अपने परिवार के लिए विरासत में संघर्ष छोड़ गये थे। माता ने ऐसी विषम परिस्थितियों में अपने मासूम बच्चों के साथ संघर्षमय जीवन गुजारा। लाला जी बचपन से शांत चित्त के व्यक्ति रहे हैं। पिता की मृत्यु के पश्चात् खास तौर पर उनकी माता जी परिवार के दायित्व और दुःखों से बोझिल हो गई थी। ऐसी दुःखद स्थिति में उनकी व्यथित माता को

देखकर लाला जी व्याकुल हो कर बोले– माता जी आप चिंता न करें, मैं इस घर का बड़ा पुत्र होने का पूरा दायित्व निभाऊँगा, मेरे छोटे भाई, बहन के प्रति जो कुछ भी बन पड़ेगा वो मैं करूँगा। आप इस बात की तसल्ली रखिए, जब तक मेरा जीवन रहेगा तब तक मैं अपने परिवार को संभाले रखूँगा। और तब से लेकर आज तक लाला जी अपने परिवार के प्रति अपना कर्त्तव्य निभा रहे हैं। आज भी लाला जी अपने छोटे भाई केशव के साथ ही रहते है, अपने परिवार को स्नेहिल, आशीर्वाद के पंख से समेटे हुए हैं।

लाला जी सहज, सरल एवं मृदुल स्वभाव के धनी हैं, उन्होंने सारा जीवन अपने परिवार और साहित्य को समर्पित कर दिया। वे आजीवन अविवाहित रहे, जीवन के सफ़र में लाला जी अपने छोटे भाई–बहन का प्यार न बँट जाए, इसलिए अकेले ही रहे। आज भी वो अपने परिवार और साहित्य के प्रति पूरी निष्ठा से अर्पित हैं। लाला जी की वृद्धावस्था ने उन्हें कुछ कमजोर व अस्वस्थ्य कर दिया है, किंतु फिर भी वे लेखन कार्य से जुड़े हुए हैं। वे बचपन से ही साहित्य से संबंधित कोई भी बात सामने आती तो वे तत्पर होकर उसे सुनते, युवावस्था में कहीं भी साहित्यिक गोष्ठी या समारोह का आयोजन होता तो वे अवश्य जाते।

लाला जी के जीवन–यापन का जरिया अध्यापन एवं खेती–किसानी रहा है। उन्होंने अपने जीवन में कभी भी पैसों के लिए काम नहीं किया, बल्कि सदैव आत्म संतुष्टी के लिए काम करते रहे और सादा जीवन उच्च विचार पर विश्वास करते रहे। इकहरी काया जिस पर धोती, कुर्त्ता, स्नेह की गहराई लिये विशाल नेत्र जिन पर घनी भौहें, उन्नत ललाट, जिन पर चिंतन की गहरी रेखाएँ, उनके मुख पर सदैव विद्यमान रहती हैं। जीवन का यह लंबा सफ़र तय करने के बाद आज भी उनके मुख में वही ओजस्वी चमक है। कहीं भी निराशा या जीवन के प्रति उदासीनता की झलक दिखाई नहीं देती, लाला जी का व्यक्तित्व एक विशाल संमदर के समान है।

1.2.साहित्यिक प्रेरणा

लाला जी साहित्य के क्षेत्र में सदैव ही सक्रिय रहे है, उन्होंने आत्म प्रेरित होकर सृजनात्मक रचनाएँ की, लाला जी को यह प्रेरणा तब मिली जब उनके अंदर से एक आवाज आई– **"बोलो क्या चाहते हो ? "मैंने**

कहा–मैं सृजनशीलता से जुड़ने की आकांक्षा लेकर आया हूँ, परंतु एक शर्त, उन्होंने कहा–कौन सी शर्त, तब आवाज आई, भीड़ से कटना होगा।"[2] (ला. ज. आंच. कवि. पृ. सं.–3)

लाला जी का कहना है– "एक चिंतनशील व्यक्ति जब एकांतचित्त होकर विचार करता है तो वह जीवन की गहराई को सुंदर व व्यवस्थित ढंग से तराशता है। उनका जीवन अनुभव पग–पग उसे दिशा की ओर निर्देशित करता है। अध्ययन, चिंतन–मनन, जीवन में सदैव पथ–प्रदर्शन का कार्य करता है, वो चाहे किसी भी दिशा में हो, किंतु हर कार्य करने से पूर्व जीवन के कदमों को नाप–तौल कर रखता है।"[3] (ला. ज. आंच. कवि. पृ. सं.–5)

लाला जी की पहली कविता का प्रकाशन सन् 1938 में बम्बई के तत्कालीन हिंदी के सम्मानीय साप्ताहिक पत्र 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' में (लाला जगदलपुरी के नाम से) हुआ। लाला जी का साहित्यिक सफ़र संघर्षमय रहा है। लेकिन लाला जी ने कभी हार नहीं मानी, जीवन के सबसे कठिन दिनों में रोजगार की तलाश में कुछ दिनों के लिये जगदलपुर छोड़कर, रायपुर से प्रकाशित साप्ताहिक 'राष्ट्रबंधु' और महासमुंद से प्रकाशित 'सेवक' में काम किया। बस्तर जिले के सर्वप्रथम स्वतंत्र हिंदी पाक्षिक 'अंगारा' और 'बस्तरिया' हल्बी साप्ताहिक का सफल सम्पादन कर साहित्यिक एवं आंचलिक पत्रकारिता को समर्पित, साधना से सिद्धी के द्वार तक पहुँचने वाले बस्तर के भूमिपुत्र ने सुविधा रहित जीवन–यापन के चलते लोक संस्कृति में जो कुछ देखा, सुना, अनुभव किया उसे चिंतन में ढाला और आंचलिक साहित्य को लेखनी दी।

अनेक कारणों से बस्तर आज भी एक पहेली है, एक चुनौती है। बस्तर में तमाशबीनों की तरह लोग आते है और बस्तर का नाम लेकर अपनी–अपनी रोटी सेंकते है। फिर चाहे वे कुर्सी के लोभी नेता हों या फिर यश लोभी साहित्यकार। बस्तर को समझने के लिए बस्तरमय होना जरूरी है।

"लाला जी की रचना प्रक्रिया" शीर्षक आलेख के अंतर्गत अपने साहित्य, सृजन के गूढ़ रहस्यों से परिचय कराते हुए उन्होंने लिखा है–"मैं अनुशासित, मर्यादित, सार्थक और बोधगम्य नव लेखन का पक्षधर हूँ, मेरी सर्जन के बिम्ब प्रतीक, सामान्य पाठक के लिये अजनबी नहीं होते। वे उसके

जाने पहचाने होते है। समास सृजन से बचता हूँ, भाषा को रूपायित करने, कथ्य को रूपायित करने तथा कथ्य को अभिव्यक्ति देने की नित नयी तलाश मुझे रहती है। मानवतावादी जीवन दर्शन से प्रतिबद्ध मेरी लेखनी अपनी रचना प्रक्रिया के तहत आगत और विगत जीवन संदर्भो के बीच एक कड़ी का काम करती है।"[4] (ला. ज. आंच. कवि. पृ. सं.–15)

लाला जी की प्रेरणा शक्ति स्वयं उनकी आत्मशक्ति है जो उन्हें प्रेरित करती है। जीवन की विभिन्न विद्रूपताओं, विसंगतियों और विभीषिकाओं के विरूद्ध उनकी साहित्यिक यात्रा जारी रखे हुए है। बस्तर की प्रकृति में से बसे लाला जी को प्राकृतिक सौन्दर्य भी सृजनशील होने की प्रेरणा देता है। इस मनोरम स्थान में प्रकृति की गोद में खेले–कूदे लाला जी की रचना यात्रा को और भी सुंदर व प्रभावशील बना दिया है। लाला जी की प्रेरणा स्वरूप यह पंक्ति जीवन में उत्साह और हौसला बढ़ाती हैं–

"मोड़ दे तू आँधियों को, अगर मन में ठान ले,
शैल छिगुनी पर उठा ले, विश्व लोहा मान ले।
प्राण! तुझ पर आपदाएँ फूल बरसाने लगें,
किंतु जो तुझ में छिपी, उस शक्ति को पहिचान ले।"[5]
(स्मारिका शक्ति–बोध पृ सं–7)

1.3. साहित्यिक–परिचय

लाला जगदलपुरी छत्तीसगढ़ के आंचलिक साहित्यकारों की श्रेणी में अग्रणी हैं। लाला जी का साहित्यिक सफर कई वर्षो से अनवरत है, उनकी सोलह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। लाला जी ने जीवन से जो कुछ पाया, और अनुभव किया, उसे कलमबद्ध किया है। **लाला जी का मत–** "साहित्यकार अपने समय के उन सभी पहलुओं को उजागर करना चाहता है, जो परिस्थितियों के अनुकूल होती हैं। साहित्यकार प्रत्यक्षदर्शी दृष्टिकोण से समाज और देश की उन सारी समस्याओं को सामने लाने का प्रयत्न करता है जो समाज में तत्कालीन रूप से चल रहे है। लाला जी ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से उन सारी समस्याओं को उठाया है।"[6]

(ला. ज. आंच. कवि. पृ. सं.–19)

लाला जी न केवल कवि है बल्कि गद्यकार, इतिहासकार, पत्रकार भी हैं–उन्होंने अपनी रचानाओं में देश, समाज के उन सारे पहलुओं को उजागर किया है, जिन से मानव समाज संत्रस्त है।

लाला जी ने अनेक रचनाओं का संग्रह किया है–

कविता–संग्रह

1. 'मिमियाती जिंदगी–दहाड़ते परिवेश'

लाला जगदलपुरी की हिंदी गज़ल **"मिमियाती जिंदगी–दहाड़ते परिवेश"** में आज के इस भौतिक युग में दौड़ते–भागते लोग किस तरह जीवन यापन कर रहे हैं, जीवन की उन सारी बारिकियों को लाला जी ने कलम से निखारा है, मानव जीवन की इन पगडंडियों में चलता हुआ अपना सारा जीवन इस तरह बिताता है मानो जीवन को जीने के लिए नहीं बल्कि जीवन को पाने के लिए या उनकी खोज करने के लिए जन्मा हो।

ग़ज़लों को अभिव्यक्ति देते हुए लाला जी का कहना है–"गेय रचनाओं में प्रारम्भ से ही 'ग़ज़लें' मुझे अधिक रूचती हैं, क्योंकि एक 'ग़ज़ल' में कम से कम पांच विचार बिन्दु मिलते हैं। ग़ज़ल की बुनावट, गागर में सागर भरने का काम करती है। 'ग़ज़ल' गीतात्मक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। इसी कारण यह हिंदी में भी इतनी लोकप्रिय हुई।"[7]

(ला.ज.मि.जि.द.परि.पृ.89)

इस 'ग़ज़ल' संग्रह में 51 ग़ज़लें हैं। लाला जी ने अपनी बात कुछ इस तरह बयान की है–

'वैसे हिंदी में नहीं ग़ज़लकारों की कमी'
पर किसी से कम नहीं 'कमतर' कोई!"

लाला जी वन देवी सरस्वती के सच्चे साधक है, किशोरवस्था से ही काव्य साधन में लीन थे। उनका अगला कविता संग्रह है–

आंचलिक कविताएँ

इस कविता संग्रह में लाला जी ने आंचलिक वातावरण और परिवेश को बहुत सुंदर ढंग से आंचलिक बोलियों में हल्बी, भतरी और छत्तीसगढ़ी में प्रस्तुत किया है। **लाला जी के शब्दों** में–"हल्बी बोली में अधिकांश साहित्य अभी तक मौलिक ही रहा है, पिछले कुछ वर्षो से हल्बी और भतरी की कुछ

लिखित साहित्य की रचना की जा रही हैं, परंतु छत्तीसगढ़ी में लिखित साहित्य काफी लंबे समय से परंपरागत चला आ रहा है।"[8]

(ला.ज.आ.कवि.पृ.116)

'आंचलिक कविताएँ' कृति के काव्य संग्रह में लाला जी ने ग्रामीण अंचल से परिचय कराया है कि किस तरह ग्रामीण जन अपनी अज्ञानता व पिछड़ेपन के कारण सभ्य समाज के भौतिक युग से दूर है। इनके काव्य संग्रह का पहला खण्ड **'हल्बी' बोली** में लिखा गया है, जिसका हिंदी में अनुवाद भी किया गया है।

एक उदाहरण दृष्टव्य है–

'अटपट घाम होय से
बेड़ा ने काम होय से'

इस कविता में कवि ने एक किसान के मेहनतकश जीवन को चित्रित किया है कि किस तरह एक किसान तपती धूप में बेड़ा (खेत) में काम करता है और परिवार का पेट भरता है।

उनका अगला कविता खण्ड, **'भतरी' बोली** में लिखी गयी है, जिसका उदाहरण दृष्टव्य है –

'इसी–हँसी ठाकला मसान–बदरी
काय बेर ? काय जोन ? न जानी होय।'

उक्त कविता में कवि ने आज के उस मानव को चित्रित किया जो अच्छे होने कर ढोंग रचते हैं, उनके अच्छे होने पर भी संदेह होता है क्योंकि उसकी अच्छाई में भी उसका स्वार्थ छिपा रहता है।

अंतिम कविता खण्ड, **'छत्तीसगढ़ी' बोली** में लिखी गयी है –

एक उदाहरण दृष्टव्य है –

'जेखर हाँत मा
स्विच आ जाथे
ओ हर
अँधियार अउ अँजोर
दूनो ला
कान पकड़ के / नचाथे।'

कवि अपने भावों को प्रकट करते हुए कहते है कि आज के शक्ति संपन्न लोग सभी को कठपुतली की तरह नचाते हैं, वे पर्दे के पीछे होते हैं। वे कुछ भी करे उन्हें दोष नहीं लगता, कवि ने इस कविता के माध्यम से आज के शक्ति संपन्न लोगों पर व्यंग्य किया है।

'जिंदगी के लिए जूझती ग़ज़ले' –

इस ग़ज़ल संग्रह में लाला जी ने जिंदगी की उन सच्चाइयों को उजागर किया है जो जीवन के हर क्षण को जीने के लिए हमेशा संघर्षशील हैं। आज का मानव–समाज जीवन की समस्याओं से निपटने के लिए प्रयत्न शील है, जन्म से मृत्यु तक मानव परिस्थितियों से जूझता रहा है, लड़ता रहा है, जीवन में हार ना मानना ही जीवन की सबसे बड़ी चुनौती है। **ग़ज़ल के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए लाला जी कहते है–** "हिंदी ग़ज़ल ने विषय वस्तु के चयन में व्यापक सोच एवं उदारता से काम लिया है, तभी तो ग़ज़ल, प्रेम की संकीर्णता से ऊपर उठकर समाज में व्याप्त विद्रूपता एवं विसंगतियों को व्याख्यायित कर रही है। इसी कारण हिंदी ग़ज़ल आज लोकप्रिय है, हिंदी ग़ज़ल की बढ़ती लोकप्रियता के कारण हर दूसरा कवि दैनिक बोलचाल की भाषा में ग़ज़ल की रचना करने में तल्लीन है।"[9]

(ला.ज.मि.जि.जू.ग.पृ.121)

ग़ज़ल के संबंध में रचनाकार को ग़ज़ल स्केल पर ध्यान रखना चाहिए। ग़ज़लकारों को ग़ज़ल में काफिया और रदीफ के सफल निर्वाह के लिए सतर्क रहना चाहिए। **ग़ज़ल लेखन के संबंध में श्री लक्ष्मी नारायण शर्मा 'साधक' जी** का कथन उचित प्रतीत होता है –

'सभी तिलों में तेल प्रतीत होता है।
ग़ज़लें बुनना खेल नहीं है ।।
शायर सफल नहीं वह जिसमें
दिल–दिमाग का मेल नहीं है।'

पौराणिक युग में महाकांतार के नाम से विख्यात दण्डकारण्य के बस्तर खण्ड में किसी ऋषि के मानिन्द एकांत साधना में रत् लाला जगदलपुरी जी ने हिंदी साहित्य को अपनी सोलहवीं कृति **'जिंदगी के लिए जूझती ग़ज़लें'** के रूप में हिंदी की बहुरंगी 89 ग़ज़लों का एक अनुपम गुलदस्ता

भेंट किया है। प्रतिकूलताओं से जूझने–निपटने और जीवन को ठीक से जीने के लिये विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विद्रूपताओं, विसंगतियों और विभीषिकाओं के विरूद्ध मानसिकता उजागर करती लाला जी की ग़ज़लें, ग़ज़ल स्केल में खरी उतरती हैं,उन्होंने अपनी तेज–तर्रार ग़ज़लों में बिम्बों और प्रतीकों का बखूबी उपयोग किया है– उदाहरण दृष्टव्य है –

'सच को खुलकर कहना मुश्किल
अपनी धुन में रहना मुश्किल
सुविधाएं दी बहुमत पाया
इस बहुमत को सहना मुश्किल'

इस ग़ज़ल में कवि के अनुसार आज के वर्तमान युग में सच को स्वीकार करना या करवाना दोनों ही मुश्किल है, अपने आप में रहना मुश्किल है, आज के लोग किसी दूसरे को सुख–शांति से रहने नहीं देते, उनके जीवन में परेशानियाँ लाने की कोशिश करते हैं।

आगे लाला जी ग़ज़लों को भाव देते हुए कहते है –

'राह पर कोई भी, हमसफर कोई नहीं,
शांति के परिवेश का पक्षधर नहीं कोई,
वस्त्र में नंगे रहें, दिगम्बर कोई नहीं।'

यहाँ कवि अपने व्यंग्य भरे अंदाज में जीवन में आने वाली मुश्किलों और परेशानियों का वर्णन करते हैं, मुश्किल के सफ़र में कोई भी साथ नहीं देता, शांति की चाह सब को है मगर उसे बनाये रखने का पक्षधर कोई नहीं, वस्त्र तो सबने धारण किये हैं मगर वस्त्रों में भी नंगे ही रहे, दिगम्बर कोई नहीं।

पड़ाव– 5

इसमें लाला जी ने जीवन की सच्चाइयों को कविता का आकार दिया है। **पड़ाव–5** शीर्षक के इस संकलन में लाला जी जीवन के उन पहलुओं को सामने लाए हैं जहाँ हम सब रहते हैं जिनसे हमारा रोज सामना होता है, जिसे हम जीते और भोगते हैं, लाला जी ने अपनी कविता की कुछ इस तरह से प्रकट किया है –

"कई बार
समाजवादी–मुखौटों की भीड़ द्वारा

लूटे–खसौटे गये
काटे–बकोटे गये
हर तरह तबाह किये गये,
नंगे–भिखमंगे
एक ऐसे पागल आदमी की तरह
हो जाता है सत्य
जिसे बहादुर लोग
पत्थरों से मार–मारकर
तड़पने के लिये
घायल छोड़ देते है
और तब ?
सत्य फिर
झूठ की तस्वीर का
एक फ्रेम बन जाता है।"[10] (ला.ज.पड़ाव–5, पृ.124)

'फ्रेम' शीर्षक कविता में लाला जी ने आज के उन लोगों पर व्यंग्य किया जो सत्य को खत्म करते है, अपनी शक्ति के बल पर असत्य का ढाँचा बना लेते हैं, सच इस सब झूठ की भीड़ में दबकर कुचल कर असत्य का रूप ले लेता है।

हमसफ़र –

यह संग्रह चार रचनाकारों के द्वारा लिखी गयी विशिष्ट रचनाओं का संकलन है। 'संकलन' में सर्व श्री बहादुर लाल तिवारी, स्वराज्य 'करूण' और लक्ष्मीनारायण 'पयोधि' की कविताएँ संकलित हैं और अंत में गनी जी की गीति–रचनाओं का समावेश हुआ है ।

'बहादुर लाल तिवारी' का एक कवितांश हमें काव्य–यात्रा के लक्ष्य बिंदु से परिचित कराता है–

'रामदीन–रहमानिया के हाथों दीपक होंगे
हर दीपक मशाल होगा
रधिया और दुखिया की कोख
आग पैदा करेगी

यात्रा समाप्त होगी'

और इस साहसिक यात्रा में **स्वराज्य 'करूण'** का काव्य–मानस रचनात्मक संघर्ष–योजना से आश्वस्त करता है –

'अपनी संघर्ष यात्रा में
जहाँ–जहाँ से भी
हमें गुजरना है
राह बनाने के लिए
तोड़ने है पहाड़'

किंतु 'पयोधि' जी के इन प्रश्नों का उत्तर कौन देगा ?

'कि क्यों काटे जाते हैं'
आखिर ये जंगल ?
क्या
जंगल देश नहीं ?

श्री गनी आमीपुरी ने अपनी गीति–रचनाओं के माध्यम से मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का दायित्व बड़ी सादगी से निभाया है–

'हमसफ़र' कविता संकलन में लाला जी के विचार –"देहारम्भ से लेकर देहावसान तक जीवन–यात्राएँ अनवरत चलती रहती हैं। साँसों का सफ़र कहीं न कहीं खत्म जरूर होता है, परंतु कहाँ और कब खत्म होगा ? इसे एक सामान्य मनुष्य नहीं जानता और यहीं से शुरूआत होती है– चिंतन–यात्रा की। काव्य–यात्रा, इसी चिंतन मार्ग की देन है।"[11]

(ला.ज.मिमि.जिंदगी–दहाड़ते परिवेश,पृ.सं.–7)

लोक–कथा संग्रह

1. हल्बी लोक–कथाएँ

बस्तर अंचल के आस–पास के क्षेत्रों में जो लोक–भाषा प्रचलित है, इन्हें ही हल्बी कहते हैं। बस्तर में घने जंगलों की भरमार है, जहाँ हिंसक जानवर रहते हैं, यही कारण है कि कथाओं में भी हिंसक पशुओं से संबंधित घटनाओं का यथेष्ट समावेश है, इन कथाओं में आंचलिक लोक–जीवन की झाँकी स्पष्ट झलकती है। इस **हल्बी लोक–कथा** का क्रम इस प्रकार है–चोंढी और कनकी, तनिक और तो खींचो, कलींदा बेटा ठहर मैं भी देख लूँगा तुझे,

जैसी करनी–वैसी भरनी, अंधकार, असत्य का राज्य, मेंढ़क की बात, कौआ और साँप, लोमड़ी, सूअर और बाघ, बाघ, केकड़ा और मनुष्य, चालाक सियार, बड़ के पेड़ का श्राप, साँप और सोने का हार, जल कन्याओं का दान, मंदिर का कलशः, पायली का सींग, खिचड़ी खाचिड़ी, सियार का विवाह।

2. बस्तर की मौखिक कथाएँ

बस्तर अंचल से संबंधित कथाओं को लाला जी ने संकलित किया है, ये मौखिक साहित्य के अंतर्गत आते हैं– गीत, गाथाएँ, कहानियाँ, नाट, पहेलियाँ, कहावतें और मुहावरे।

'बस्तर की मौखिक कथाएँ' कृति का कथा क्रम है–'मामा–भाँचा गँवर', कोलियादा अरू नीरादा बइर, जनम भकवा, बोकड़ा के अक्कल, देवत्तुर वराम, राजा जो बेटी, नियाँवर गोठ, जुगे चतुर दुआरे ढान, कुटरूंगा, कोलया आरू ढेला, कोलयार उआट, गुम जोलाना पिटी, गोटोक पाय जो बुंध, कंगाल मनसूड़, सार दूल, ऐलड़हरी अनितम दादाल, कोसारानी सावकारना पिटो, पोरटा लेका, ललचाहा काकाड़, राजा आरू बेंल कयना, सालू आरू गाद्धा, बन–कैना, बेंदरा आउर माँछी।

3. वन कुमार और अन्य लोककथाएँ

इसमें लाला जी ने कथाओं के माध्यम से शिक्षा व प्रेरणा दी है, इसका कथा क्रम है–चिड़िये की चाह, बुढ़िया की खुशी, मर गया सियार, वन कुमार, गरीब घर की बेटी, तितली और महल, करेलाबती, गुँजली, कछुआ दामाद, समझौता ।

4. बस्तर की लोक–कथाएँ

इसमें लालाजी ने बस्तर अंचल से जुड़ी कथाओं का संकलन किया है इसका कथाक्रम है– बलिदान, बैगन कुमारी, नया जन्म, नकली चीता, सुबह का सपना, शिकारी, भेड़ की भिड़न्त, लोमड़ी की दोस्ती, दो भाई और जलपरी, प्रयत्क्ष ज्ञान, मनेया बोदा और सिलादेई।

इतिहास / संस्कृति

1. बस्तर का इतिहास और संस्कृति

इसमें लाला जी ने सम्पूर्ण बस्तर का इतिहास लिखा है, बस्तर अंचल में बसे ग्रामीण जनों की जीवन शैली, सभ्यता, रीति–रिवाज, खान–पान,

रहन–सहन, वेश–भूषा आदि सारी बातों की विस्तृत व्याख्या की है, बस्तर के प्रारंभिक चरण से उसके विकास क्रम को लाला जी जैसे इतिहासकार ही प्रस्तुत कर सकते हैं। बस्तर से संबंधित उन सारी घटनाओं, राजा–रजवाड़ों वहां की क्रांति, वहां के पर्यटन स्थल आदि का सुंदर चित्रण किया, बस्तर जिला जो प्राकृतिक सौन्दर्य का धनी और ऐतिहासिक तथ्यों के लिए प्रसिद्ध हैं।

2. बस्तर लोक कला एवं संस्कृति प्रसंग

लाला जगदलपुरी की **'बस्तर लोक कला एवं संस्कृति प्रसंग'** कृति अपनी विशिष्ट लेखन शैली के लिए प्रसिद्ध है इसमें लाला जी ने बस्तर अंचल से जुड़ी सारी बातों को क्रमवत प्रस्तुत किया है वहाँ के जन जीवन की जीवन शैली को अपनी कलम से उजागर किया है।

3. बस्तर की लोकोत्तियाँ

लाला जगदलपुरी ने बस्तर अंचल से जुड़ी प्राचीन बातों को जो काल विशेष में कही गई थी, कालावधि के पश्चात् वही लोकोत्तियाँ बन जाती है, इन्हीं का संकलन **'बस्तर की लोकोत्तियाँ** कृति में किया है। इसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य है –

1."रिस खाय आपन के, बुध खाय बिरानके"– हल्बी

अर्थात्–क्रोध स्वयं को खा जाता है और बुद्धि औरों को खा जाती है। तात्पर्य यह है कि क्रोध करके क्रोधी स्वयं का नाश करता है, क्योंकि क्रोध से बुद्धि नष्ट हो जाती है, किंतु बुद्धि से काम लेने पर शत्रु पर विजय प्राप्त होती है।

2."घरे नांदू, बाहरे कांदू"–भतरी,

अर्थात्–घर में गरजने वाला, बाहर रोने वाला। तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति स्वार्थवश घर के भीतर तो दहाड़ कर घर के लोगों को आंतकित करता है, परंतु घर की सीमा के बाहर निकलते ही जिसका पुरूषत्व घुटने टेक देता है।

लाला जगदलपुरी एक कुशल कवि, कथाकार के साथ कुशल अनुवादक भी है। उन्होंने मूल रचना का हल्बी बोली में अनुवाद किया है ये क्रमशः है–

1. प्रेमचंद्र चो बारा कहनी

लाला जगदलपुरी एक ऐसे साहित्यकार है, जिन्होंने काव्य, लोक कथा, इतिहास और संस्कृति पर तो अपनी कलम चलाई ही है, साथ ही इन्होंने अनुवाद भी किया है। लाला जी ने प्रेमचंद्र जैसे साहित्यकार की चुनिंदा कहानियों का हल्बी में अनुवाद किया है। प्रेमचंद्र भारत के अकेले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने ग्रामीण भारत के जीवन को अपनी कहानियों का आधार बनाया है, उनकी कहानियों में जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का चित्रण तो है ही, साथ ही भारतीय जीवन को जीविका देने वाले मूलगामी तत्वों का भी मर्मस्पर्शी चित्रण है। इसलिए प्रेमचंद्र की कहानियाँ पाठक को जीवन के प्रति राग से भर देने में समर्थ रही है। उन्होंने साधारण भाषा तथा सहज कथा विन्यास में जीवन के जटिलतम मर्मों को व्यक्त किया है। उन्हीं की कहानियों का अनुवाद लाला जगदलपुरी ने किया है, चूंकि उन्हें हिंदी तथा हल्बी दोनों पर समान अधिकार प्राप्त है इसलिए अनुवाद में मूल अपनी समग्रता के साथ आ गया है। **प्रेमचंद्र चो बारा कहनी** कहानी का क्रम है–बैला–जोड़ी चो कहानी, ईदगाह, मांगनी घड़ी, पंच–परमेश्वर, समस्या, निसा, सवा सेर गेहूँ, आतमाराम, पूस चो राती, कफ़न, जुरमाना, लेखक।

2.'बुआ चो चीठीमन बेटी चो नाँव'

लाला जी ने **'बुआ चो चीठीमन'** में भारत के पहले प्रधानमंत्री स्व. पंडित जवाहर लाल नेहरू जी की लिखी उन चिट्ठियों का हल्बी में अनुवाद किया है जब वे जेल में थे, वहाँ वे अपनी पुत्री श्रीमती इंन्दिरा गांधी को ख़त को लिखते थे, उन्हीं के लिखे पत्रों को लाला जी ने हल्बी बोली में अनुवाद किया है।

3. 'रामकथा'

लाला जगदलपुरी ने श्री रामचंद्र की कथा को हल्बी कविता में लिख कर राम कथा को बस्तर के ग्रामीण जनों तक पहुँचाया है। ताकि बस्तर वासी रामजी की कथा को पढ़े, जीवन में मर्यादा पुरूषोत्तम राम की तरह अपने गुणों का विकास करे।

4. 'हल्बी पंचतंत्र'

लाला जी ने **'हल्बी पंचतंत्र'** में पंचतंत्र की उपदेशात्मक कहानियों का संकलन कर उन्हें हल्बी बोली में अनुवादीत किया है, ताकि ग्रामीण जन इन

पंचतंत्र की उपदेशात्मक कहानियों को सुनकर अपने जीवन को सुंदर व सहज बनाये।

1.4. लेखन का उद्देश्य

साहित्य जगत में कोई भी साहित्यकार अपने लेखन के माध्यम से अपने आस–पास के वातावरण, परिवेश, समस्याओं को अपनी कलम से समेटने का प्रयास करता है। हर साहित्यकार की रचना का एक उद्देश्य होता है और लाला जी भी इससे अछूते नहीं है। उनकी लेखन का उद्देश्य वर्तमान में चल रही विसंगतियों, बुराइयों, समस्याओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत करना है। लाला जी ने जीवन की गहराई को करीब से देखा है, उसे जिया है, भोगा है। वे जानते हैं कि दुःख, तकलीफ, अभाव क्या होता है ? उन्होंने अपनी रचनाओं में जीवन के बारीक पहलुओं को कलम से उकेरा है। जो समय की परिस्थितियों के अनुकूल होती है। अपने प्रत्यदर्शी दृष्टिकोण से समाज, देश की उन सारी समस्याओं को सामने लाने का प्रयास करता है जिससे समाज ग्रस्त है। लाला जी ने अपनी रचनाओं में उन सारी समस्याओं को उजागर किया है। जैसे कि उनकी 'आंचलिक कविताएँ'। इसमें लाला जी ने बस्तर अंचल में बसे उन ग्रामीण किसानों के अभावपूर्ण उनके सीधे सादे जीवन को प्रस्तुत कर यह बताने का प्रयास किया है, किस तरह बस्तर अंचल में बसे ग्रामीण किसान शिक्षा के अभाव, निर्धनता से साहूकारों के द्वारा ठगे जाते हैं। उनका मानसिक व शारीरिक शोषण किया जाता है। सदियों से इस अभाव से ग्रस्त होने के बावजूद भी उनकी जीवन शैली में कोई सुधार नहीं हो पा रहा है। आज भी वे कम कपड़े, पहनते है, और पेज पी कर ही अपना गुजारा करते हैं।

लाला जी के लेखन का उद्देश्य ही यही है कि उनकी इन समस्याओं की तरफ शासन व सामान्य जनता का ध्यानाकर्षण करना है। ताकि उनकी समस्याओं को कम किया जा सके। उन्हें शिक्षित कर रोजगार उपलब्ध कराया जा सके। लाला जी अपने लेखन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते है **–'मेरी रचना धर्मिता अपने परिवेश के प्रति, समाज के प्रति और अपने राष्ट्र के प्रति दायित्व का निर्वाह करती है। त्रासद समाज व्यवस्था के प्रति आश्वस्ति की अभिव्यक्ति के लिये मेरी**

लेखनी संकल्पित है। मेरी सर्जना के दायरे में राजनीति का प्रवेश वर्जित तो नहीं है, परंतु उसे मैं सर्जना और सर्जक की अस्मिता पर हावी होने नहीं देता। सर्जना और सर्जक के बीच की विभाजक रेखा का मैं विरोधी हूँ।'

1.5 रूचियाँ / सम्मान / पुरस्कार

रूचियाँ

लाला जी का बचपन से साहित्य की तरफ रूझान रहा है। वे बचपन से ही साहित्य से संबंधित कोई भी बात सामने आती तो तत्पर होकर उसे सुनते, कहीं भी साहित्यक गोष्ठी या समारोह का आयोजन होता तो वे अवश्य वहाँ जाते । इस तरह लेखन के प्रति उनका लगाव धीरे–धीरे बढ़ता गया। लाला जी का सबसे अधिक लगाव रचना लेखन में रहा है। साथ ही उन्हें भ्रमण करने का भी शौक है। रोज शाम को वे अपने निवास स्थान से सिरहासार चौक होते हुए, लाल बाग तक पैदल भ्रमण करते थे। वे सादा जीवन उच्च विचार में विश्वास करते हैं। उन्हें साधारण धोती–कुर्त्ता ही पहनावा अच्छा लगता है। ये भी उनकी रूचि में ही शामिल है।

सम्मान–पुरस्कार

लाला जी को अपने साहित्य लेखन की दिशा में अनेक सम्मान व पुरस्कार प्राप्त हुए है। वे अपने सम्मान को ही अपना पुरस्कार मानते है। इनके सम्मान हैं –

लाला जगदलपुरी को सम्मान –

1. 23 अक्टूबर सन् 1972 में 'चंदैनी गोंदा' के धमतरी मंच पर सम्मानित।
2. धमतरी साहित्य समिति द्वारा सन् 1977, 1990 में सम्मानित।
3. म.प्र. प्रगतिशील लेखन संघ जगदलपुर अधिवेशन में 29 अक्टूबर 1982 में सम्मानित।
4. कानपुर में अखिल बाल साहित्यकारों के साथ बाल–कल्याण संस्था द्वारा 17 फरवरी 1983 में सम्मानित व पुरस्कृत ।
5. 7 दिसम्बर 1985 को जगदलपुर स्थित "दण्डकारण्य समाचार" प्रेस में सम्मानित।
6. "पारम्परिक बस्तर शिल्पी परिवार" कोंडागाँव द्वारा सन् 1988 में

सम्मानित–पुरस्कृत।

7. छत्तीसगढ़ी हिंदी साहित्य सम्मेलन रायपुर द्वारा सन् 1988 में सम्मानित–पुरस्कृत।

8. छत्तीसगढ़ी भाषा साहित्य प्रचार समिति, रायपुर द्वारा 14 फरवरी सन् 1993 को जगदलपुर में सम्मान।

9. 'सूत्र' द्वारा जगदलपुर में सन् 1992 में सम्मानित।

10. 'पड़ाव' प्रकाशन, भोपाल द्वारा हिंदी भवन भोपाल में 30 मई सन् 1992 में सम्मानित।

11. भोपाल की साहित्यिक संस्था 'समय की गोष्ठी' में सन् 1992 में सम्मानित।

12. 'जगन्नाथ मंदिर' जगदलपुर में स्थानीय कायस्थ समाज द्वारा सन् 1995 में सम्मानित।

13. म.प्र. लेखक संघ भोपाल द्वारा 15 जुलाई सन् 1995 को 'अक्षर–साहित्य' सम्मान से पुरस्कृत।

डॉ आरती बोरकर
बलौदा बाजार
मो.–9977256145

मेरी यादों में लाला जी

जो व्यक्ति समस्त सांसारिक क्रियाकलापों में लिप्त होकर भी सांसारिक बंधनों से मुक्त होता है वही ऋषि या संत कहलाता है। जैसे कमल का पत्ता पानी में रहकर भी पानी का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

उसी प्रकार लाला जगदलपुरी जी थे। चलते–फिरते, उठते–बैठते साहित्य साधना में ही लीन रहते थे इसलिए उन्हें ऋषि या संत की उपाधि से विभूषित करना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

लाला जी के माता–पिता बस्तर के रहने वाले थे और उनका जन्म स्थान भी बस्तर ही था, अतः बस्तर की कला और संस्कृति से उनका विशेष लगाव था। कवि, साहित्यकार, कलाकार में व्यवस्था एवं वातावरण को बदलने की अद्‌भुत क्षमता होती है। भारत की स्वतंत्रता के विद्रोह के समय हमारे अनेक कवियों और साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से स्वतंत्रता सेनानियों को देश के प्रति मर मिटने को प्रेरित किया।

मेरा उनसे कोई साहित्यिक लगाव नहीं था। उनके पिता श्री रामलाल एवं मेरे पिता श्री पितांबर लाल में गहरी दोस्ती थी। मेरे पिता उन्हें भाटो यानी जीजा कहते थे अतएव उनके परिवार से निकटता का संबंध था। एक चित्रकार होने के नाते इस हरफनमौला सरस हृदय कवि लाला जगदलपुरी से गहरा भावनात्मक संबंध था इसलिए वह मुझसे अत्यंत स्नेह रखते थे।

लाला जगदलपुरी जी का बस्तर में साहित्य के विषय में विशेष योगदान रहा है। एक प्रबुद्ध साहित्यकार और कवि के नाते उन्होंने प्रायः सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। बस्तर जैसे आदिवासी क्षेत्र में रहने के बावजूद बस्तर के लोक साहित्य से उन्हें विशेष लगाव रहा है।

बस्तर को हर बोली भाषा में उन्होंने अपनी कलम चलाई है। जिसमें हल्बी, भतरी, गोंडी प्रमुख बोलियां हैं।

विद्वान विद्वान होता है। हर प्रबुद्ध की अपनी अलग विशेषता होती है। इसकी किसी अन्य बौद्धिक व्यक्ति से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। ऐसा मेरा मानना है।

लाला जगदलपुरी जी ने आजीवन अविवाहित रहकर साहित्य साधना में अपना सर्वस्व जीवन अर्पित कर दिया। मैं साहित्यकार नहीं हूं अतएव साहित्य के गुण दोष पर कोई टिप्पणी करना मेरे लिए संभव नही है पर उनके साथ रहकर इतना मुझे ज्ञात है कि उन्होंने अपने जीवन में दर्जनों आलेख, कविताएं, कहानियां और व्यंग्य इत्यादि लिखे हैं। उनकी कविताओं में कम शब्द और अर्थ गहरे होते हैं।

लिखना लेखक का स्वभाव है। हर लेखक या कलाकार अपनी रचनाओं से अपनी भावनाएं व्यक्त करता है जो देश और समाज के लिए एक संदेश होती है। उसकी इच्छा होती है कि वह प्रकाशित हो, जिससे समाज को उसका लाभ प्राप्त हो। लाला जी ने साहित्य में माई दंतेश्वरी, मां कंकालिन और विद्या की देवी सरस्वती जी के बहुत सुंदर गीत भी लिखे हैं। भले ही वे आज चलन में नहीं हैं।

लाल जगदलपुरी जी का गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं पर समान अधिकार था। बस्तर की आदिवासी जनजीवन की परंपरा एवं संस्कृति पर उन्होंने अधिक लिखा है। बस्तर का सांस्कृतिक इतिहास जिसे मध्य प्रदेश शासन ने प्रकाशित किया, वह अधिक लोकप्रिय हुआ। कहानियां, बाल कथाएं, लेख, कविताएं ग़ज़ल सभी विधाएं में लाल जी ने खूब लिखा। वे चाहते भी थे कि वे प्रकाशित हो किंतु धनाभाव के कारण वह मजबूर थे।

उम्र के आखिरी पड़ाव में उन्होंने लिखना बंद कर दिया था। इसका फायदा उठाकर नौसीखिए और नकलची लेखकों को एक अवसर मिल गया। बस्तर के बारे में ऊलजुलूल लेख लिखकर जनता को भ्रमित करने का सुनहरा अवसर प्राप्त हो गया। मुझे बड़ा दुख हुआ। मैंने लाला जी से इस बारे में कहा कि आपके रहते हुए बस्तर की संस्कृति के बारे में लोग गलत जानकारियां दे रहे हैं और आप चुप हैं। उन्होंने कहा कि मैंने अपनी लेखनी को विराम दे दिया है अब मैं नहीं लिखूंगा। मैंने कारण जानना चाहा तो उनका कहना था –'मेरी हजारों रचनाएं बिन प्रकाशित हुए कचरे में पड़ी हैं और मैं उन्हें प्रकाशित करने में अक्षम हूं। अतएव मैंने लिखना बंद कर दिया है। मैंने कहा –'आप लिखिए, मैं उसे प्रकाशित करने का आश्वासन देता हूं।' उन्होंने लिखा और बस्तर की संस्कृति को देश के सामने रखा था। मैंने उसे आकृति कला संस्था की ओर

से प्रकाशित किया था। लाला जी की आगे की ग़ज़ल कहानियां, लेख आदि आकृति की ओर से प्रकाशित की गयीं।

लाला जी आज की लाचार और त्रुटि पूर्ण व्यवस्था पर लिखते थे। उनके व्यंग्य अधिक तीखे और चुटिले होते थे। ऐसा नहीं है कि लाला जी ने अपनी रचनाएं प्रकाशित करने का प्रयास नहीं किया। कई बार उन्होंने शासन को लिखा किंतु लालफीताशाही के कारण वह हार गए। मैंने भी प्रशासन को उनकी रचनाएं प्रकाशित करने को लिखा था। किंतु कहते हैं रसूख वाले को ही सरकारी मदद मिल पाती है, यह सत्य है।

उनके अनेकों शिष्य थे जिन्होंने उनसे प्रेरणा प्रकार साहित्य जगत में अपना बड़ा नाम किया है। उनमें से श्री गुलशेर खां शानी (काला जल के लेखक), श्री पूर्ण चंद्र रथ, लक्ष्मी नारायण परोधि, श्री धनंजय वर्मा इत्यादि थे।

लाला जी का जीवन अत्यंत गरीबी में बीता इसलिए उन्होंने जन जीवन की व्यथा को करीब से देखा है। तभी उसका दर्द उनकी रचनाओं में भी झलकता है। लाला जगदलपुरी जी ने अपनी पुस्तक 'जिंदगी के लिए जूझती ग़ज़लें' में हर विषय चाहे न्याय व्यवस्था हो, चाहे प्रकृति प्रेम हो, सामान्य जीवन से संबंधित कोई विषय हों, प्रायः सभी विषयों पर लिखा है। उनका ग्रंथ 'बस्तर लोक' जिसे आकृति संस्था के द्वारा प्रकाशित किया गया है, बस्तर के जनजीवन और उनके रहन–सहन, खान–पान एवं अन्य बोली भाषा पर शोध पूर्ण लेखन से प्रकाश डाला है। बस्तर से प्रेम करने वाले लेखकों एवं अन्य विद्यार्थियों के लिए **'बस्तर का सांस्कृतिक इतिहास'** एवं **'बस्तर लोक'** यह दोनों ग्रंथ बड़े महत्वपूर्ण हैं।

लाला जगदलपुरी बड़े चिंतनशील और गंभीर प्रकृति के थे। बहुत कम उनके अत्यंत निकट के व्यक्तियों को ही मालूम है कि वह बड़े विनोद प्रिय और शौकीन स्वभाव के व्यक्ति थे। सुगंधित तेल और कई प्रकार के खुशबूदार इत्र के वे शौकीन थे। अपने कान में इत्र से सनी हुई का फाहा अवश्य लगाया लगते थे।

मैंने उन्हें क्रोधित होते बहुत ही कम देखा है। परिवार नियोजन विभाग की ओर से एक कवि गोष्ठी का आयोजन स्थानीय सीरासार भवन में था। लाल जी उसे गोष्ठी के अध्यक्ष पद पर आसीन थे। एक कवि की कुछ

पंक्तियों को दरवाजे पर खड़ा एक शराबी बार–बार दोहरा कर व्यवधान उत्पन्न कर रहा था। बार–बार समझाने पर भी बात नहीं माना। लाला जी अत्यंत क्रोधित हो गए और उन्होंने कवि सम्मेलन के समापन की घोषणा कर दी। उस शराबी को वहां से हटाया गया और लाला जी को समझा बुझाकर गोष्ठी पुनः प्रारंभ की गई।

लाला जी अन्याय के घोर विरोधी थे। इस नगर के तथाकथित सफेद पोश असामाजिक तत्वों की करगुजारियों का मैंने विरोध किया। उन्होंने मुझे प्रताड़ित करने का प्रयास किया। लाला जी को पता लगा। वह बहुत नाराज हुए कि मैंने उन्हें बताया नहीं। लाला जी ने उनके बारे में दो पेज का उनकी दादागिरी का आलेख दंडकारण अखबार में प्रकाशित कर दिया।

लाला की राजनीति से हमेशा दूर रहते थे। किंतु किसी के सुझाव या प्रभाव में आकर लाल जी एक बार पार्षद के चुनाव के लिए खड़े हो गए। साहित्यकार की लोकप्रियता कोई काम नहीं आई। लाला जी की जमानत जप्त हो गई। मोहल्ले का कोई कोई 'दादा' ही उस पद के लिए उपयुक्त होगा, एक साहित्यकार नहीं। कोई अनजाना व्यक्ति भी यदि लाला जी से पहली बार उनसे बात करता, उनकी शुद्ध हिंदी सुनकर ही उसे ज्ञात हो जाता कि वह कोई महान साहित्यकार बातें कर रहा है।

जीवन के अंतिम दिनों में लाला जी कुछ उदास और खिन्न रहने लगे और एक दिन उन्होंने मुझसे कहा कि –'बंशीलाल जी मैंने विवाह न करके बड़ी गलती की। आज मेरी पत्नी होती तो मेरी सेवा करती।' मुझे उनकी चिंता का कारण समझ में आ गया। उनका मूड ठीक करने के लिए मैंने तत्काल कहा कि –'आज भी क्या बिगड़ा है। आप कहें तो वृद्धाश्रम से एकाद बुढ़िया को उठा लेता हूं।' उन्होंने बड़ी जोर से ठहाका लगाया।

लालाजी हमेशा मीडिया से नाराज और परेशान रहते थे। वह उनसे दूर ही रहा करते थे। मीडिया वाले जब उनसे कुछ पूछना चाहते तो उनसे दूर हो जाते। ऐसे समय में मीडिया वाले मुझसे संपर्क करते कि लालाजी से हमें इस विषय पर बात करनी है आप हमारी बात करवा दें। तब मैं लाला जी से बात करता और उनको समझाता फिर शांत होकर वे मीडिया वालों के सवालों का जवाब देते।

लाला जी अत्यंत सादगी पसंद और शांत प्रकृति के व्यक्ति थे। धोती कुर्ता और जैकेट ही उनकी वेशभूषा थी। उन्होंने अपने विवाह के बारे में कभी सोचा ही भी नहीं। उनकी माता जी के द्वारा बार–बार आग्रह करने के बाद भी वे शादी को तैयार नहीं हुए। उनकी मां का कहना था कि मैं वृद्ध हो गई हूं अकेली मैं काम से थक जाती हूं। बहू के आ जाने से मुझे सहारा हो जाएगा। किंतु लाला जी उसका कोई उत्तर भी नहीं देते थे। लाला जी की लेखन में अत्यधिक व्यस्तता देखकर एक दिन उनकी मां ने कहा कि –'अच्छा होइस तुई बिहाव नी करे नाई जानो बहु हा उचकी होए के मरसिस।(अच्छा हुआ जो तूने शादी नहीं किया, नहीं तो तेरी बहू आत्महत्या कर लेती)

लाला जी को संपूर्ण भारत के साहित्य जगत से सम्मानित किया गया किंतु खेद है कि शासन की ओर से उन्हें कोई सम्मानजनक उपाधि नहीं मिली जिसके वह हकदार थे। मैं भाग्यशाली था कि मुझे लाला जगदलपुरी जी का भरपूर स्नेह मिला। बस्तर के साहित्य जगत का यह हीरा हमेशा चमकता रहेगा।

बंशीलाल विश्वकर्मा
मां दुर्गा चौक,
जगदलपुर
मो.–7587175058

एक शब्दसूर्य को याद करते हुए

आठवीं के बाद प्रतिभावान छात्रवृति के लिये चयनित होने के बाद (1972 में) बड़े भैया श्री रामनारायण ताटी ने मेरा एडमिशन जगदलपुर के बस्तर हाईस्कूल में करा दिया था। हायर सेकेंडरी (1975) तक मेरी पढ़ाई जगदलपुर में ही हुई। क्रिकेट ग्राउण्ड के पास स्थित जनरल हॉस्टल में रहता था। कपड़ों की इस्त्री के लिये कवि स्व. श्री गनी आमीपुरी की दुकान पर जाया करता था। वहाँ अक्सर लालाजी को देखता। छरहरी काया, मगर रौबदार व्यक्तित्व। वाणी का एक अलग ही नाद और गांभीर्य। पहली ही बार मैं उनके वैशिष्ट्य से प्रभावित हो गया। तब तक मैंने किसी साहित्यकार को सक्षात देखा भी नहीं था। पढ़ने का चाव था, इसलिये साहित्य और साहित्यकार का मतलब मालूम था।

सुप्रसिद्ध कवि लाला जगदलपुरी जी को सब लोग आदर से 'लालाजी' कहा करते थे। उनकी बातचीत की शैली से प्रभावित होकर उनके वहाँ से रुख़सत होने के बाद मैंने जिज्ञासापूर्वक गनीजी से पूछा था – "चाचा, कौन हैं ये ?"

– "अरे...बच्चे, नहीं जानते तुम? ये लालाजी हैं.... बहुत बड़े कवि ...लाला जगदलपुरी। बहुत नाम है इनका। बहुत अच्छा लिखते हैं। हम सबके गुरु जैसे हैं!" गनीजी ने विभोर होकर उनका परिचय दिया था। उसके बाद मैं अक्सर शाम के समय उन्हें बिस्वास रेस्टोरेंट के सामने से गुज़रते हुए देखा करता और अपने साथियों को उनके बारे में बताया करता था।

1979 में रायपुर के दुर्गा महाविद्यालय से पढ़ाई पूरी कर मैं अपने गाँव भोपालपटनम् लौट आया था। रायपुर में पढ़ाई के दौरान ही मेरी कविताएँ और कहानियाँ प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं और एक रचनाकार के रूप में मेरी पहचान बनने लगी थी। उन्हीं दिनों समकालीन कविता पर केन्द्रित एक परिचर्चा के लिये मैंने लालाजी को डाक से प्रश्नावली भेजी। लालाजी ने इसे गंभीरता से लेते हुए तुरंत उन प्रश्नों के

उत्तर भेज दिये। अब बारी थी उनकी सुंदर लिखावट देखकर चमत्कृत होने की। इस प्रकार पहली बार लालाजी से संवाद स्थापित हुआ।

कुछ दिनों बाद किसी काम से जगदलपुर जाना हुआ। संयोग से मेरी भेंट वरिष्ठ लेखक भैरवप्रसाद उपाध्याय जी से हो गयी। मैंने चर्चा के दौरान उनसे कहा कि लालाजी से मिलना है। वे प्रसन्न हुए। हम दोनों लालाजी के घर 'कवि निवास' गये। वे बाहर धूप में कुर्सी पर बैठे कुछ लिख रहे थे। उपाध्याय जी ने नमस्कार किया तो वे चौंककर उठ खड़े हुए। उनका मुखमंडल प्रसन्नता से दीप्त हो उठा।

– "आप कब आये ?" उपाध्याय जी की ओर प्रश्न उछालकर उन्होंने मेरी ओर देखा। उनकी आँखों में अपरिचय के भाव झिलमिला उठे। तब तक मैं उनके चरणस्पर्श कर चुका था।

– "लालाजी, ये लक्ष्मीनारायण पयोधि हैं। अच्छा लिख रहे हैं। भोपालपटनम् में रहते हैं...."

–"ओ...हो...पयोधि..." और लालाजी ने तपाक से मुझे गले लगा लिया। यह कहते हुए कि "इन्हें तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ।" और इधर–उधर पढ़ी मेरी कविताओं–कहानियों की जो निश्छल सराहना उस समय उन्होंने की थी, वह उनके स्नेहिल स्पर्श की भाँति ही मेरी संचित पूँजी बन गयी।

मैं 1980 में फिर जगदलपुर गया। कुम्हारपारा में रहता था। लेखन और प्रकाशन निरंतर था। रोज़ शाम को लालाजी के दैनिक भ्रमण– कार्यक्रम में अपनी साहित्यिक जिज्ञासाओं के साथ शामिल होकर उनसे चर्चा करते चलना मेरी दिनचर्या ही बन गयी थी। उसी दौरान लालाजी की 1972 में प्रकाशित 'हल्बी लोककथाएँ' पुस्तक में से कुछ कथाएँ चुराकर एक लेखक द्वारा 'माड़िया लोककथाएँ' नामक पुस्तक में अक्षरशः शामिल करने की घटना का पता चला। लालाजी अत्यंत व्यथित और कुपित थे। मैंने पूरा प्रकरण सप्रमाण तब के प्रतिष्ठित साप्ताहिक 'ब्लिट्ज' को भेजा। 'लालाजी को क्रेडिट क्यों नहीं दिया गया' शीर्षक से मेरा वह लेख 'ब्लिट्ज' ने महत्व के साथ प्रकाशित किया। लालाजी को संबंधित लेखक का माफ़ीनामा मिला और उन्होंने उसे माफ़ कर दिया। यद्यपि ऐसी घटनाएँ उनके साथ कई बार

घटीं।

लालाजी के साथ होने वाली नियमित चर्चाओं में ही 'गुण्डाधूर' का ज़िक्र आया। मैंने इस चरित्र और 'भूमकाल' की घटनाओं पर विस्तार से चर्चा की। मैंने कहा – "इस पर मैं कुछ बड़ा काम करना चाहता हूँ।" उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक प्रोत्साहित किया। मैंने कुछ शोध और विभिन्न क्षेत्रों के बुज़ुर्गों से बातचीत के आधार पर एक ख़ाका तैयार कर उस पर आधारित एक काव्यनाटक 'गुण्डाधूर' के नाम से 1982 में पूरा किया। पात्रों के हल्बी–भतरी मिश्रित संवादों में लालाजी का स्पर्श उनकी उदारता, सदाशयता और सहयोग–भावना का परिचायक है। 'दण्डकारण्य समाचार' के रविवारीय परिशिष्ट में इसके धारावाहिक प्रकाशन के लिये तब स्व.किरीट दोशी जी ने लालाजी से ही चर्चा की थी। इस प्रकाशन के बाद ही स्व. हरि नायडू जी ने 'गुण्डाधूर' के मंचन की योजना तैयार की थी, जिसमें मेरे मित्र स्व.सुरेन्द्र प्रधान, हिमांशुशेखर झा सहित अन्य साथी उनके साथ थे। इस नाटक के मंचन से सबसे अधिक प्रसन्न लालाजी हुए थे। इस नाट्यकृति की भूमिका भी लालाजी ने ही लिखी, जिसमें उन्होंने यह स्वीकर किया है कि "जननायक 'गुण्डाधूर' पर इस नाटक से पूर्व कोई व्यवस्थित साहित्य प्रकाश में नहीं आया है, इस दृष्टि से भी यह नाटक अभूतपूर्व है। यह नाटक निश्चित रूप से एक गुमनाम जनयोद्धा को 'क्रांतिनायक' के रूप में स्थापित करने में महती भूमिका निभायेगा। नाटक के श्रृंखलाबद्ध मंचन के दौरान मिली लोकप्रियता ने एक सार्थक रचना के रूप में इसे प्रमाणित तो किया ही है।" (1990)।

लालाजी की निःस्वार्थ,निर्विकार और एकनिष्ठ साहित्य–साधना ने मुझे उनका मुरीद बना दिया था। छायावादी युग में लिखना आरंभ किया था। इसलिये उन्होंने उस युग का अवसान और प्रगतिवादी साहित्य का विकास भी देखा था। उनका लेखन साहित्य की दोनों धाराओं का समन्वित रूप था। उनके माध्यम से मुझे पुरानी पीढ़ी के अनेक साहित्यकारों के बारे में बहुत कुछ जानने–समझने का अवसर मिला।

सन् 1979 में रायपुर से भोपालपटनम् लौटने के बाद मैंने कुछ साथियों

को जोड़कर वहाँ 'पल्लव साहित्य समिति' का गठन कर लिया था। उसी के माध्यम से वहाँ के निपट असाहित्यिक माहौल में कुछ साहित्यिक गतिविधियाँ भी शुरू की। संस्था द्वारा सन् 1983 में पहली बार एक कवि सम्मेलन आयोजित किया गया था। मेरे आग्रह पर लालाजी उस कवि सम्मेलन के लिये भोपालपटनम् गये थे। फिर हमने मध्यप्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ की भोपालपटनम् इकाई की ओर से लालाजी के साहित्य पर केन्द्रित 'महत्व लाला जगदलपुरी' का आयोजन किया। तब लालाजी ने विशेष रूप से इस बात का उल्लेख किया था कि वह उनके साहित्य पर गंभीर विमर्श का पहला आयोजन था। पल्लव साहित्य समिति द्वारा प्रकाशित सर्वश्री बहादुर लाल तिवारी, गनी आमीपुरी, स्वराज्य करुण और मेरी कविताओं के साझा संग्रह 'हमसफ़र' का संपादन लालाजी ने ही किया था, जिसका लोकार्पण भोपालपटनम् में किया गया। हम सब एक बार भद्रकाली संगम के भ्रमण पर भी गये। भोपालपटनम् से कुछ दूर स्थित गोदावरी–इंद्रावती नदियों के मनोहारी संगम पर केन्द्रित उनका लेख उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'बस्तर संस्कृति और इतिहास' में संकलित है। ये कुछ ऐसे प्रसंग रहे हैं, जब लालाजी भोपालपटनम् आते और मेरे परिवार का आतिथ्य ग्रहण करते। जब तक मैं जगदलपुर में रहा, उनके परिवार का उतना ही स्नेह मुझे भी मिला।

मैं जनवरी 1990 में आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा प्रकाशित की जाने वाली मासिक बाल पत्रिका 'समझ झरोखा' के संपादन–दायित्व के लिये भोपाल आ गया। लालाजी ने तब भारी मन से मुझे विदा किया था। उनके पत्र नियमित रूप से मिलते रहे।

लालाजी की बाल रचनाएँ 'समझ झरोखा' में प्रकाशित करने में मुझे आत्मिक सुख मिलता। उनके पहेली गीतों के धारावाहिक प्रकाशन के लिये मैंने 'समझ झरोखा' में एक रोचक स्तंभ शुरू किया 'गा बुझौवल'। यह स्तंभ बच्चों के बीच काफी लोकप्रिय रहा। मेरे आग्रह पर उन्होंने 'वन कुमार','बस्तर की लोकोक्तियाँ' और 'बस्तर : इतिहास और संस्कृति' आदि पाण्डुलिपियाँ तैयार कीं, जो क्रमशः भार्गव एंड संस, इलाहाबाद, राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर,

लखनऊ और मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल से प्रकाशित हुईं। 'बस्तर : इतिहास और संस्कृति' को अंतिम रूप देने का दायित्व उन्होंने मुझे सौंपा। इस प्रकाशन से वे अभिभूत थे। विभिन्न प्रसंगों में वे तीन बार भोपाल आये और मेरे परिवार के सदस्य बनकर रहे।

वरिष्ठ गीतकार और प्रतिष्ठित पत्रिका 'संकल्प रथ' के संपादक राम अधीर जी ने लालाजी पर केन्द्रित अंक (मार्च, 2001) के लिये मुझसे लेख माँगा, "संघर्ष का सार्थक नाम : लाला जगदलपुरी'। यह लेख मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा लालाजी को प्रदत्त 'अक्षर आदित्य सम्मान' (1995) के प्रसंग में प्रकाशित स्मारिका में छपा था। लेख पढ़कर लालाजी ने तुरंत पत्र लिखा,जिसका एक अंश इस प्रकार है –

"प्रिय पयोधि जी, स्नेह!

कल एक कार्ड लिख छोड़ा था। आज फिर लिखने का मन हो गया। सच कहूँ, तुमने अपने आलेख–दर्पण में मेरी रचनात्मक एवं वैयक्तिक छवि को थोड़े में निखार कर रख दिया है। मेरी स्थिति उस 'गौरैया' की–सी हो गयी है, जो एक बार दर्पण में स्वयं को निहार लेने के पश्चात बार–बार दर्पण पर जा बैठती है। निस्संदेह, मुझ पर केन्द्रित यह एक अपूर्व आलेख है। (दिनांक 03.08.1995 का पत्र)।

यह मेरा सौभाग्य रहा है कि लालाजी का निश्छल स्नेह मुझे खूब मिला। वे मेरी चिंता करते थे और मुझ पर विश्वास भी। वे मेरे पत्र की प्रतीक्षा करते थे और मिलते ही तुरंत उत्तर भी देते। उनके पत्रों में हमारे संयुक्त परिचितों से संबंधित छोटे–छोटे विवरण होते। अपनी किसी भी समस्या को मुझसे साझा करने में वे कभी संकोच नहीं करते। दिनांक 08. 03.1995 का यह पत्रांश उनके अविचल स्नेह का ही प्रतीक है :

"प्रिय पयोधि जी, स्नेह!

तुम्हारा 20.02.1995 का पत्र समय पर मिल गया था। तुम्हारे पत्र से मुझे अपनेपन के नैकट्य का अहसास होता है। पचहत्तर की आयु चल रही है। शरीर कुछ झटक गया है। आलस्य दबोचने की कोशिश करता है, परंतु उसे मैं कामयाब होने नहीं देता। मैं स्वस्थ हूँ। घर में सब ठीक हैं। याद

करते रहते हैं।

आज ही महावीर अग्रवाल की चिट्ठी आयी है। तुम्हारे सुझाव के अनुसार मैंने उनके पास अपनी पाँच ग़ज़लें भेज दीं थीं। पत्र के अनुसार उन्होंने मेरी ग़ज़लें छपने के लिये इलाहाबाद भेज दीं हैं।

मुझे वित्तीय सहायता प्रावधान के अनुसार नियमित मिल रही है। उसमें फ़िलहाल किसी व्यवधान की कोई आशंका नहीं है।

अब मैं जगार–गीतों के संकलन–कार्य में निश्चित रूप से जुट जाऊँगा। फिर मैं सम्पर्क करूँगा। इस कार्य में थोड़ा समय लगेगा।

निकट भविष्य में मैं भोपाल आऊँगा ही। तुमसे भेंट करने की बड़ी इच्छा हो गयी है।...."

ऐसे अनेक पत्र हैं,जिनमें उनकी जीवटता, कार्य के प्रति लगन और अपनों के प्रति अविरल स्नेह के भाव प्रतिबिंबित हैं।

उनकी जन्मशती को समारोहपूर्वक मनाने और ज़िला ग्रंथालय के नामकरण के माध्यम से उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के आत्मीय प्रयासों के लिये ज़िला प्रशासन की जितनी भी प्रशंसा की जाये,वह कम है।

———————

लक्ष्मीनारायण पयोधि
ए–1, लोटस रो, स्प्रिंगवैली,
कटारा हिल्स, बाग़मुगालिया,
भोपाल–462043 (मध्यप्रदेश)
मो. 8319163206
ई मेल : payodhiln@gmail-com

लाला जी का साहित्य–स्व उपजा जलस्त्रोत

आज के बस्तर और 100 वर्ष पूर्व के बस्तर में एक बड़ी विषमता थी। एक छोटा सा कस्बा जगदलपुर था जो स्वर्गीय लाला जी का कार्यस्थल था। न यह महानगरों से जुड़ा था और न ही यहां आवागमन के पर्याप्त साधन थे। शिक्षा की बातें करें तो मैट्रिक की परीक्षा भी रायपुर जाकर देनी होती थी। पत्र–पत्रिकाओं की सुगमता से उपलब्धता बड़ी दुश्वार थी। एकमात्र साहित्य उपलब्धता की जगह थी तो वह थी राजा रुद्र प्रताप देव लाइब्रेरी। शहर के बीचो बीच। राज महल के सामने। वहां सरस्वती जैसी मासिक पत्रिका उपलब्ध हो पाती थीं। उस समय साहित्य सृजन अपने आप में स्व उपजे जलस्रोत की तरह था। साहित्य रचना के संबंध में सोचना अकल्पनीय था। लालाजी की साहित्य रचना, उस स्वयं उपजे जलस्रोत की तरह थी। उस समय लालाजी द्वारा की गई साहित्य साधना, उस ऋषि की साधना की तरह थी जो बिना किसी इच्छा के साधना करता है निरंतर। उस काल में न तो हिंदी के पाठक ही अधिक थे और न ही उनके समकालीन लेखक अथवा कवि। लाला जी की रचनाओं का मूल्यांकन करना ही है तो उस समय काल के परिवेश में ही किया जाना चाहिए।

मैं तो अपने बाल्यकाल से ही लाला जी को देखता रहा हूं। कभी कभार हमारे मोहल्ले (प्रतापगंज पारा) से निकलते तो हम इतना तो जानते थे कि वे कवि हैं। उन्हें देख हम खेलना भूल खड़े हो जाते और मित्रों से बातें करते कि वे एक कवि हैं; धोती, कुर्ता और लंबे घुंघराले बालों वाले। यद्यपि कवि का अर्थ भी सही ढंग से हम नहीं जानते थे। यहां सड़क में हमारा खेल बहुत देर के लिए रुक जरूर जाता था। वह अपनी धुन में कुछ–कुछ सोचते हुए निकल जाते।

जहां तक समाज के संबंध में बात है तो आदिवासी समाज से उन्हें बेहद लगाव था और दशहरा आदि त्योहारों में उनसे मिलने, करीब से देखने के लिए सिरहासार चौक जहां दशहरे, जगन्नाथ जी के रथों का निर्माण होता था वे अक्सर रथ में लगे कार्यकर्ताओं से चर्चा भी किया करते थे। अतः मेरे

विचार से उनकी कृतियों के बारे में कहे जाने से पूर्व जगदलपुर की तत्कालीन परिस्थितियों का भी ध्यान रखना होगा। शेष भारत से 1–2 यात्री बस से जगदलपुर शहर जुड़ा था। बस्तर के पाठक और गिनी चुनी पत्रिकाओं से ही यहां साहित्य संपर्क हो पाता था।

जहां तक समाज को बदलने का सवाल है तो उन्होंने साहित्य को अपना अध्ययन बनाया हो, ऐसा नहीं लगता। वे बस्तर के समाज को, लोगों के सामने परोसने का कार्य भर करते रहे।

बस्तर में साहित्यिक विकास में उनकी हमेशा से ही भागीदारी रही है, तभी तो स्वर्गीय गुलशेर खां शानी प्रख्यात कथाकार उनसे एकदम करीब से जुड़े थे और उन्हें अपना आदर्श मानते थे। कई नये रचनाकारों को उन्होंने प्रोत्साहित किया जो आज भी उनका गुणगान करते नहीं थकते और विभिन्न साहित्यिक विधाओं में उच्च शिखर पर हैं।

मुझे ऐसा लगता है कि बाल साहित्य से उनका अत्यंत लगाव था जिसे वे लोक कथाओं के माध्यम से परोसते रहे। चूंकि उन्होंने कुछ समय श्रीराम पाठशाला में एक शिक्षक के रूप में भी कार्य किया था और बच्चे उन्हें हमेशा अपने करीब पाते थे। दूसरी ओर कविताएं उनके मन के विचारों को उजागर करती थी। वैसे भी हर साहित्यकार अपने जीवन और रचना के माध्यम से अपने आप में अलग होता है। अतः मेरे विचार से किसी की भी तुलना आपस में किया जाना उचित नहीं है।

उनकी अधूरी रचनाएं जिन्हें वे पूर्ण कर सके और पुस्तक रूप में कई रचनाएं उनके स्वर्गवासी होने के बाद प्रकाशित हुईं। शायद कई रचनाएं तो उनके दिमाग में ही रह गई और परिस्थिति वश कलमबद्ध न हो पाईं। वैसे घूमते फिरते हुए इस बारे में अक्सर चर्चा किया करते थे। वैसे पद्य लेखन उन्हें अत्यंत प्रिय था। जिस में लिखना कम सोचना अधिक होता था। जगदलपुर की सड़कों में टहलते हुए उनका मस्तिष्क अधिकतर इसी सोच में गुजरता लगता था। पत्र–पत्रिकाओं को माध्यम बनाना तो हर रचनाकार चाहता है पर आज से 60–70 वर्ष पूर्व न तो इतनी पत्रिकाएं थी, न ही आज की तरह के संचार माध्यम। छठवें–सातवें दशक में भी सुलभ माध्यम रायपुर से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्रों के साप्ताहिक या त्योहारों के प्रकाशित

होने वाले वार्षिकांक हुआ करते थे। जहां उनकी रचनाएं प्रतिष्ठा से छापी जाती थीं।

आजादी के आंदोलन में नहीं लगता कि उनकी सक्रियता थी। वैसे भी जब से मेरा परिचय हुआ तब तक देश स्वतंत्र हो चुका था। उस समय के राजनीति करने वालों से कोई खास दिलचस्पी न थी। वे चूंकि कवि थे और बस्तर की प्रकृति उनकी रचनाओं में छाई रहती थी। वैसे गद्य लेखन में उनकी भी रूचि थी परंतु पद्य लेखन में अधिक सक्रिय थे। वैसे कई स्थानीय गद्य लेखक उन्हें गुरु का दर्जा दिया करते थे। उन्हें अपना आदर्श मानते थे।

राजा रुद्र प्रतापदेव लाइब्रेरी से उन्हें बेहद लगाव था और कोई अन्य उसे हथियाने की कोशिश करता तो उनका शांतमन उग्र हो उठता था पर क्षणिक! लाइब्रेरी की चाबी वे अपने पास ही रखा करते थे। उनकी हमेशा यह इच्छा रही कि यह लाइब्रेरी पुनः अपने पुराने स्वरूप को प्राप्त करे पर यह संभव न हो पाया।

परिवार उनका व्यक्तिगत मामला था अतः इस संबंध में पूछने या बातें करने की मेरी हिम्मत नहीं होती थी। हां, मेरा विवाह भी कुछ विलंब से हुआ। अतः जब मेरा विवाह नहीं हुआ था तो उनके साथ देख कर कुछ लोग उनसे कहते भी कि शुक्ला जी आपकी तरह अविवाहित रहेंगे। तो मेरे पक्ष में कहते हैं कि उनका विवाह होगा और भविष्य में एक अच्छा परिवार होगा, जहां बाल बच्चे होंगे। उनका कथन मेरे लिए एक आशीर्वाद ही था और विवाह के संबंध उनका विचार भी समझने का मौका मिलना था।

राजनीतिक बहस तो कभी उनसे हो नहीं पाई न ही उनके राजनीतिक विचार परिलक्षित हुए।

वे निष्पक्ष लेखन के पक्ष में थे। उसे एक आदर्श मानते थे। मेरे जानते में उन्होंने कई बार इस ओर इंगित किया। यहां यह उल्लेखनीय है कि वे स्वर्गीय पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का नाम अक्सर लिया करते थे। वैसे छत्तीसगढ़ के आंचलिक साहित्यकारों का भी नाम लिया करते थे।

वैसे तो उनकी रचनाओं में क्लिष्ट शब्द बहुतायत से हुआ करते थे परंतु उर्दू उनसे अछूती नहीं थी। नगर में भी उस समय कई उर्दू के शायर थे।

जिनकी संख्या हिंदी के कवियों से अधिक थी। स्वर्गीय कमालुद्दीन कमाल, श्री करीम बख्श गाजी, श्री मीर साहब, श्री नूर काजीपुरी, श्री रऊफ परवेज साहब आदि। जबकि हिंदी कवियों में श्री दयाशंकर शुक्ल, पंडित गंगाधर सामंत, श्री लक्ष्मी लाल जैन थे। अक्सर मुझे अपने प्रारंभिक साहित्यिक जीवन में कथाकार स्वर्गीय शानी के निवास में होने वाली छोटी–छोटी गोष्ठियों में सानिध्य का अवसर मिला।

नए रचनाकारों के लिए भी मदद करते थे हमेशा तत्पर रहते थे उनकी रचनाओं में होने वाले व्याकरण के दोषों को ठीक किया करते थे। स्वर्गीय लाला जी को कभी यह परवाह करते नहीं देखा कि उनकी रचनाएं छप रही है अथवा नहीं, परंतु लेखन उनका हमेशा चलता रहता था। वे अच्छे पाठक भी थे जो निरंतर उपलब्ध पत्रिकाओं एवं पुस्तकों का अध्ययन किया करते थे।

सही पाठक या श्रोता सामने वाहवाही करने से नहीं होता अतः वे सही पाठक उन साधारण श्रोता या पाठक को कहा करते जो साहित्यिक समाज से दूर रहकर भी पढ़ने अथवा सुनने के शौकीन थे।

बस्तर की आदिवासी संस्कृति के संबंध में वे हमेशा सकारात्मक थे और अक्सर तीज त्योहारों के बारे में बताया करते थे। वैसे उनके आधुनिकरण के पक्षधर थे परंतु उनके सांस्कृतिक मूल्य को बचाए रखकर ताकि भारत के नक्शे में बस्तर अपना स्थान बनाए रखे।

उनके तकिया कलाम की ओर मैंने ज्यादा ध्यान नहीं दिया परंतु अपनी किसी बात को वजन देकर कहना होता तो 'मैं कहता हूं' शब्दों को कई बार दोहराते।

उन्होंने महिला लेखन को हमेशा प्रोत्साहित किया। कई महिला कवि एवं लेखिकाएं उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करती रहीं।

लालाजी खुद का व्यक्तित्व हमेशा बनाए रखे और लगता है किसी लेखन गुट या खेमे को कभी स्वीकार नहीं किए। जो भी बुलाता मर्यादा से वह वहां अवश्य जाया करते। जीवन पर्यंत अपने आदर्शों को संजो कर रखा और जिया।

कृष्ण शुक्ल, जगदलपुर

लाला जी जैसा कोई नहीं

एक छोटा सा कस्बा जगदलपुर, आज से करीबन 50 साल पहले प्रतापगंज मोहल्ले में गनी आमी पुरी जी की एक छोटी सी दुकान, जहां वे कपड़ों की धुलाई और इस्तरी करते थे। मैं भी वहां अपने कपड़े प्रेस करवाने जाया करता था। शाम के वक्त अक्सर वहाँ कुछ लोग आया करते थे, साहित्य से जुड़े लोग। इनमें प्रमुख रूप से कीर्ति शेष लाला जगदलपुरी जी और अन्य बहुत से साहित्यकार भी वहीं मिल जाते थे।

गर्मी की छुट्टियों में गनी आमी पुरी जी अपनी उर्दू में लिखी कविताएं और ग़ज़लें मुझे देवनागरी लिपि में लिखने के लिए कहते। वे बोलते और मैं लिखता। इस तरह मैं साहित्य के संपर्क में आया और आमी पुरी जी की वजह से कीर्ति शेष लालाजी और बहुत से साहित्यकारों से भी संपर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ।

उस समय के कुछ मशहूर नाम इशरत मीर साहब, रउफ परवेज, पंडित बालगंगाधर सामंत, रघुनाथ महापात्र जोगी, जोगेंद्र महापात्र जोगी, नूर जगदलपुरी, बंशी लाल विश्वकर्मा, अमिता त्रिवेदी, अवध किशोर शर्मा और कई अन्य साहित्यकारों से मेरा संपर्क हुआ।

शाम के वक्त अक्सर मैं और लाला जी साथ में जगदलपुर की गलियों और सड़कों में घूमा करते। दलपत सागर की पार पर घूमने में बड़ा आनंद आता था। कभी महादेव घाट तो कभी इंद्रावती के किनारे घूमते हुए हम बतियाते थे।

हमारा साथ–साथ घूमना बढ़ता चला गया। तब लोग कहने लगे कहां साठ के लाला जी और कहां सोलह का मैं। हमारी उम्र के लोग उस समय अपनी तरह के शौक पालते थे। लेकिन हम साहित्यिक चर्चाओं में मगन रहते थे।

लाला जी के साथ घूमना और विभिन्न काव्य गोष्ठियों में भाग लेना, रचनाओं पर चर्चा समीक्षा आदि में मुझे ज्यादा आनंद आता था। लालाजी

उद्‌गम साहित्य समिति के अध्यक्ष भी थे। लिहाजा वहां अभिलाष दवे, मदन आचार्य, गोपाल सिम्हा और बहुत से लोग जो साहित्य की गतिविधियों से जुड़े हुए थे, संपर्क में आये।

प्रतापगंज में, जहां हमारा घर है, अक्सर लालाजी घूमते हुए आते और मेरे पिता के पास बैठकर बातचीत करते, चाय पीते। मैं भी उनसे बात करता।

अत्यंत कृषकाय, कुर्ता और धोती पहने, हाथ में छाता लिए अपनी धुन में मगन लालाजी कई बार अकेले ही जगदलपुर की गलियों एवं सड़कों पर भ्रमण करते हुए दिख जाते थे।

मैंने एक दिन उनसे पूछा भ्रमण करते समय आप क्या सोचते रहते हैं ? उन्होंने तपाक से कहा– मैं अपनी रचनाएँ बुनता रहता हूं।

जिस जमीन पर वे चलते थे, जिस वातावरण में रहते थे, जिन लोगों से मिलते थे; उनकी बात अपनी रचनाओं में करते थे। विकट परिस्थितियां, माहौल उनकी रचनाओं में बखूबी बिना किसी मिलावट के आते थे। चाहे ग्रामीण अंचल की बात हो, चाहे कस्बाई गतिविधियों की बात हो, लालाजी जो देखते थे वही रचनाओं में उतार देते थे।

उनकी सबसे बड़ी खासियत थी, किसी का एहसान लेना पसंद नहीं करते थे। बड़े खुद्दार कभी न झुकने वाले। इसी व्यक्तित्व के कारण उन्हें कई बार अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने अपने आप से लड़ाई कभी छोड़ी नहीं।

एक बार तत्कालीन मुख्यमंत्री स्वर्गीय श्री अर्जुन सिंह जी उनकी कुटिया में अकस्मात पहुंच गए। पूर्व सूचना भी बहुत कम समय की थी। अतः लाला जी जैसे थे उसी हालत में उनसे मुलाकात हुई। उनकी झोपड़ी का दरवाजा नीचे था। लिहाजा उन्हें झुककर अंदर जाना पड़ा। लालाजी बड़ी सादगी से अपनी कुटिया में बैठे हुए थे। किताबों का ढेर लगा हुआ था। पांडुलिपि इधर–उधर रखी हुई थी।

अर्जुन सिंह जी ने विस्मय से देखा। साहित्य का साधक बहुत साधारण तरीके से इस तरह अभावग्रस्त जीवन जी रहा है। उन्होंने सरकारी इमदाद

मंजूर की। लाला जी की तरफ से पहले भी ऐसी सहायता की कभी कोई पहल नहीं हुई थी।

बीच में जब किसी कारण से सहायता राशि मिलने में कुछ रुकावट सी होने लगी, तो उन्होंने कहा, ठीक है जैसी सरकार की मर्जी लेकिन हम लोगों ने कहा शासन ने एक बार आपको जो सम्मान दिया है वह तो जारी रहना चाहिए, थोड़ी बहुत जद्दोजहद के बाद सहायता राशि फिर से मिलने लगी।

लाला जी के व्यक्तित्व में जुझारूपन था, स्पष्टवादिता थी वे उतने ही सहज, सरल और निश्छल स्वभाव के थे।

एक बार विश्वास होटल में कुछ साहित्यकार बैठे हुए थे। गनी आमी पुरी जी ने मेरी तरफ देखते हुए कहा कि यदि आप लाला जगदलपुरी जी की नकल उनके सामने ही उतार दें, तो आज डबल चाय पार्टी होगी।

थोड़ी ही देर में ही लाला जी भी वहां आ पहुंचे। लाला जी से मेरी काफी घनिष्ठता हो गई थी। मुझसे बातचीत करना उन्हे बहुत पसंद था। मेरी रचनाएं भी उन्हें अच्छी लगती थी। मेरे व्यवहार से वे खुश रहते थे। मैं कभी–कभी उनसे कुछ छूट ले लेता था। लिहाजा समोसा खाने और चाय पीने के दौरान मैंने बातचीत के दौरान उनकी एक कविता ''मेरा चेहरा मुझे डराता, दर्पण कितना बदल गया है'' यह लाइन बिल्कुल हूबहू मिमिक्री करते हुए उनके अंदाज में सुना दी। सब लोग हतप्रभ रह गए। लालाजी ने अचानक मेरी ओर देखा। कुछ क्षणों के लिए मुझे देखते रहे, और इसके बाद ठहाका मार कर हंसने लगे। उन्हें हंसता देख सभी साथी अट्टहास करने लगे। मैंने आमी पुरी जी से कहा लो आपकी मनमर्जी हो गई, अब तो डबल चाय की पार्टी होगी।

लाला जी का स्वभाव कई बार बच्चों जैसा होता था। वे घर आते और मेरी बेटियों से बात करते तो उनका स्नेह और ममत्व देखने को मिलता। हालांकि उन्होंने विवाह नहीं किया था। लेकिन बच्चों के प्रति उनका अगाध स्नेह मैंने देखा। उनकी आंखों में बच्चों को देखकर एक चमक आ जाती थी। वे बच्चों से बड़े प्रेम से बात करते थे।

अपने शुरुआती दौर में लाला जी ने बहुत कठिनाइयां झेलीं। उनके पिता का निधन हो जाने के बाद मां ने ही उन्हें संभाला। मां के प्रति उनका असीम प्रेम रहा। जब तक माँ रही वे मानते थे उनके ऊपर छत्रछाया हमेशा बनी हुई थी। मां के जाने के बाद वे टूट गए।

मैंने उससे एक बार का पूछा लाला जी आपने विवाह क्यों नहीं किया? तब उनका कहना था, पारिवारिक जवाबदारी निभानी थी इसलिए विवाह के लिये समय ही नहीं मिला। इतना बड़ा त्याग और बलिदान अपने परिवार के लिए उन्होंने किया।

दूसरों के दुख में भी बड़ी जल्दी दुखी हो जाते थे। एक बार आमी पुरी जी का स्वास्थ्य खराब हुआ। बाद में बताया गया कि उन्हें कैंसर हो गया है। हम लोगों ने भी कुछ गुप्त सहायता उनकी की। लालाजी हमेशा उनके स्वास्थ्य को लेकर बड़े चिंतित रहते थे। तब मैंने उनका एक यह भी स्वरूप देखा कि अपने साथियों की कितनी चिंता करते हैं।

वे सहज लोगों के लिए बहुत सरल थे। बिल्कुल पानी की तरह, लेकिन छल करने वालों के लिए वह बिल्कुल कठोर थे। ठीक वैसे ही जैसे हंसिए की धार। उन्हें छल कपट कभी पसंद नहीं था। वे सीधी सीधी बात करते थे। सीधी सीधी बात करना और सुनना पसंद करते थे।

उन्होंने कई पत्र–पत्रिकाओं का संपादन किया, पत्रकारिता की। उनके घर के पास ही एक इमारत थी, जिसे तिवारी बिल्डिंग के नाम से जाना जाता था। एक बार उन्होंने किसी एक प्रभावशाली व्यक्ति के विरुद्ध अपने समाचार पत्र में कुछ ऐसा छाप दिया जो उसे बुरा लगा। लिहाजा उसने लालाजी पर हमला करवा दिया, लेकिन लालाजी तो लालाजी थे, वे कब झुकने वाले थे। उन्होंने न समझौता किया न ही अपने रास्ते से हटे। यह उनकी दृढ़ता का एक उदाहरण है।

लाला जी को अमराई की छांव में बैठना बड़ा अच्छा लगता। सरई के फूल जब फूलते उसकी खुशबू में लालाजी आनंद का अनुभव करते। जब महुआ टपकता, टप टप की ध्वनि और उसकी मादक खुशबू उनमें एक नया उन्माद और आनंद भरती थी।

वे प्रकृति प्रेमी थे। महादेव घाट पर या दलपत सागर के किनारे कई शाम हमने सूरज को डूबते देखा और संध्या सुंदरी को जल में प्रवेश करते हुए देखा। बारिश में लाला जी प्रकृति के वैभव से मुग्ध हो जाया करते थे। सर्दी के दिनों में अपनी कुटिया के सामने धूप में बैठना उन्हें अच्छा लगता था। कभी कभी मैं भी उनका साथ दे देता था। इस समय लोक जीवन और लोक साहित्य पर विस्तार से चर्चायें होती थी।

उनकी हमेशा चिंता रहती कि किस तरह से स्थानीय विशेषताएं सुरक्षित रहे और बाहर भी लोग उन्हें जाने कि जनजातीय जीवन कितना समर्थ है। उसके अपने संस्कार हैं, जीवन शैली है। गीत हैं, नृत्य हैं और भी बहुत सारी चीजें। जंगलों के प्रति उनका बहुत आकर्षण था।

जब वे साहित्य की साधना में लीन होते तो ऐसा लगता था कोई मनीषी गंभीर साधना में लीन है।

लगभग 1950 के आसपास जगदलपुर में हुए विशाल हिंदी साहित्य सम्मेलन को याद करते हुए उनकी आंखों में एक चमक आ जाती थी। बस्तर के तत्कालीन महाराजा स्वर्गीय प्रवीर चंद्र भंजदेव ने इस समारोह में स्वयं कमान संभाली थी। राहुल सांकृत्यायन और न जाने कितने बड़े बड़े साहित्यकार इस कार्यक्रम में आए थे। लाला जी का कहना था कि इतना बड़ा साहित्य सम्मेलन उन्होंने पहली बार देखा था। सन् 1976 के आसपास प्रगतिशील लेखक संघ का जब सम्मेलन हुआ। जहां तक मुझे ध्यान है, लाला जी को वहां सम्मानित भी किया गया था। उसकी याद भी लालाजी पूरी शिद्दत के साथ करते थे।

इसी दौरान में कैफी आजमी साहब और ख्वाजा अहमद अब्बास साहब से भी मुलाकात करने का मुझे मौका मिला राजेश जोशी, बसंत लाल झा, के. के. झा और तुषार कांति बोस से भी मैं संपर्क में आया।

साहित्यिक समारोह में लाला जी को बड़े आदर के साथ बुलाया जाता था। एक साहित्यिक समारोह का वर्णन उन्होंने स्वयं ही किया था, जब प्रसिद्ध कथाकार गुलशेर अहमद शानी मंच पर थे। सीरासार में संभवतः यह कार्यक्रम हो रहा था और जब शानी जी को पुष्प माला पहनाई जा रही थी

तो उन्होंने पुष्प माला अपने हाथ में ही पकड़ ली और सीधे दर्शक दीर्घा में आ गये जहां लालाजी बैठे हुए थे उन्होंने हाथ में ली हुई माला लालाजी के गले में पहना दी। लालाजी अचानक उठ खड़े हुए क्षण भर दोनों एक दूसरे को एकटक देखते रहे। लालाजी ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। कुछ देर तक दोनों इसी मुद्रा में रहे।

दोनों की आंखें भीग गई। सभा में उपस्थित लोगों ने करतल ध्वनि से उनका स्वागत किया। बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि लाला जी ने गुलशेर अहमद शानी जी की पहली कहानी प्रकाशित की थी। शानी जी उन्हें बहुत मानते थे।

लगभग 1975 के आसपास की बात है। एक प्रतियोगिता हुई भारत सरकार शिक्षा समाज कल्याण मंत्रालय की ओर से जिस में कविता लेखन की भी प्रतियोगिता थी। उसमें मुझे प्रथम पुरस्कार मिला। बहुत दिनों बाद लालाजी ने मुझे बताया कि वे उसके निर्णायक थे।

लालाजी की एक बड़ी खासियत थी, वह अपना काम पूरी निष्पक्षता से करते थे। कोई उन्हें अपनी तरफ झुका नहीं सकता था। जो है सो है इस मनोवृति के चलते उनके कई अपने भी उनसे नाराज हो जाते थे। लेकिन लाला जी को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था। कौन खुश होता है और कौन नाराज !

लालाजी घूमने फिरने के भी शौकीन थे। लक्ष्मीनारायण पयोधि से मुलाकात हुई तो जहां तक मुझे ध्यान है बस्तर के अंदरूनी इलाकों में उन्होंने भ्रमण किया। एक चित्र आज भी मेरे ध्यान में है जिसमें नारायण पाल मंदिर के पास लालाजी और पयोधि खड़े हुए हैं।

बस्तर की पुरातत्विक संपदा और इतिहास को बहुत सूक्ष्म दृष्टि से उन्होंने टटोला। बस्तर का इतिहास और संस्कृति नामक उनकी पुस्तक में बस्तर की बहुत सी रहस्यमय बातों को उन्होंने उद्घाटित किया है। उसमें ऐसे बहुत से तथ्य हैं जो पहले लोगों को मालूम नहीं थे या मालूम भी थे तो बहुत बिखरे हुए थे। उसे सिलसिलेवार उन्होंने एक किताब के रूप में प्रस्तुत किया। इसलिए लालाजी न केवल साहित्यकार रहे, अपितु वह बहुत

बड़े इतिहासकार, पुरातत्वेत्ता तथा कलामर्मज्ञ भी थे।

उन्होंने छत्तीसगढ़ी तथा बस्तर की बोलियों पर काफी काम किया। उनके व्यक्तित्व में यहाँ की बोलियां, कहावतें, मुहावरे रचे बसे थे। वे जब भी बात करते उनकी बात में स्थानीयता का पुट हावी होता था। लालाजी की एक बड़ी खासियत यह थी वे बातें तो स्थानीयता की करते थे, लेकिन, उनका इशारा वैश्विकता की ओर होता था। कस्बे में रहने के बावजूद देश दुनिया की उन्हें जानकारी रहती थी।

कठोर स्वभाव के कारण उन्हें मनाना हर किसी के बस की बात नहीं थी। जो उन्हें ठीक से नहीं जानता था वह उन्हें हठी, कठोर, दृढ़संकल्पी नकारात्मक रूप में मान लेता, लेकिन ऐसी बात नहीं थी।

75 बरस की उम्र होने को आई तो मैंने उनको सुझाव दिया कि आप पर एक टेली फिल्म बननी चाहिए। फिल्म मैं बनाऊंगा मैंने जापान से कैमरा मंगवाया था। बड़ा महंगा कैमरा था उसका उपयोग किया गया। सपना फोटो स्टूडियो से मिक्सींग और कुछ आउटडोर शूटिंग का काम लिया।

लाला जी थोड़े से चिंतित हो गए। यह कैसे होगा उन्होंने कभी कैमरे का सामना नहीं किया था। सवालों को लेकर भी वे चिंतित थे। मैंने उन्हें आश्वस्त किया सबकुछ आपकी जानकारी में होगा आप निश्चिंत होकर अपनी बात रखियेगा उस समय एक नई टेक्निक अपनाई गई जिसमें प्रश्न पूछते वक्त कैमरा बंद कर दिया जाता था और केवल जवाब ही रिकार्ड किया जाता था। लालाजी को यह तकनीक पसंद आ गई।

उनसे बातचीत और कविता पाठ की रिकार्डिंग की गई। आउटडोर के लिये वनांचल, दलपत सागर, महादेव घाट तथा जगदलपुर के विभिन्न इलाकों में घूमते हुए दृश्यांकन किया गया। फिल्म बनी लाला जी ने इसे देखा और बहुत प्रसन्न हुए उन दिनों वीडियो कैसेट का चलन था। लिहाजा एक कैसेट मैंने उन्हें समर्पित किया। भोपाल में इसकी स्क्रीनिंग की गई थी।

जहां तक मेरा ख्याल है कि उस समय लाला जी के बारे में एकमात्र वीडियो रिकॉर्डिंग फिल्म के रूप में थी।

सन 2020 में उनकी जन्म शताब्दी का अवसर था। जनवरी 2021 की

बात है बस्तर के तत्कालीन कलेक्टर श्री रजत बंसल से मैंने बताया कि उन पर एक फिल्म है उसको पुनः संपादित कर लोकार्पण कराना है।

दुर्ग में बैठकर हमने फिर 2 दिन स्टूडियो में बैठकर फिल्म पुनः संपादित की। कुछ चीजें जोड़ घटाव के बाद नया कलेवर दिया।

इसे माननीय मुख्यमंत्री जी से लोकार्पित करवाया गया। माटी के गीत, चिड़ियों के छंद लगभग पचास मिनट की अवधि की उन पर पहली फिल्म यूट्यूब पर भी उपलब्ध है।

जब भी हम लाला जी से मुलाकात करते कभी रउफ साहब साथ होते तो कभी मेरा छोटा भाई शंकर या कभी मैं अकेला।

हम उनकी बातचीत की वीडियो रिकॉर्डिंग भी करते जिसमें उनकी विनोदप्रियता, प्रेम और उनकी उन्मुक्त बातचीत तथा खुलकर खिलखिलाने की स्मृतियों को दर्ज करते। ये प्रसंग उनके व्यक्ति्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं।

ऐसी रिकॉर्डिंग को देखकर कई लोगों ने मुझसे कहा कि लाला जी के अंदर एक बाल सुलभ जिज्ञासा, सरलता और सहजता का एक समंदर बह रहा है। लाला जी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी खासियत थी वे मित्रों के मित्र थे। पहचान सबसे रखते थे, भूलते नहीं थे।

आज वे हमारे बीच नहीं हैं लेकिन सदा हमारे बीच हैं हम उन्हें भूले ही कब थे जो उन्हे याद करने की आवश्यकता पड़े। वे हमारे हृदय में सदैव स्पंदन की तरह हैं।

त्रिलोक महावर
रायपुर, 7000873240

मजे से गुनगुनाता गीत मंजिल तक पहुंच जाऊं

जगदलपुर नगर के डोकरी घाट पारा का कवि निवास अभी कुछ दिन पहले तक हम लिखने पढ़ने वालों के लिए साहित्यिक तीर्थ हुआ करता था क्योंकि वहां बस्तर के साहित्य के कालजयी पुरुष लाला जगदलपुरी रहा करते थे लाला जी के छोटे से एक कमरे में एक खाट बिछी होती थी जहां हर हमेशा एक पुरानी मच्छरदानी लगी हुई मिला करती थी। उसी कमरे में एक छोटा सा टेबल भी हुआ करता था, जिसमें किताबों के साथ विभिन्न पत्रिकाएं चिट्ठियों का ढेर मिला करता था। कमरे में एक पुरानी लकड़ी की अलमारी भी रखी हुई थी। इसमें किताबों के साथ लालाजी अपने कपड़े भी रखा करते थे। इसी कमरे के दरवाजे के बायीं दीवार में कपड़े टांगने का हैंगर लगा हुआ था, जिसमें लाला जी के गंदे कपड़े लटके हुए मिलते थे। उसके ऊपर की दीवार में मकड़ी का जाल बुना हुआ दिखाई पड़ता था। इस छोटे से कमरे में लाला जी की दैनिक उपयोग की सारी सामग्री यहां–वहां बिखरी हुई दिखाई पड़ती थी।

जब भी मैं लाला जी से मिलने कवि निवास के उनके कमरे में पहुंचा लाला जी को पुरानी बेंत की कुर्सी में धंसे हुए तल्लीनता से पढ़ते हुए पाया। उनको कभी भी कमरे में खाली बैठे मैंने नहीं देखा। जब भी उनके पास गया वह मुझे पढ़ते मिले या फिर कुछ लिखते। पहले जब एकदम स्वस्थ थे तब देखते ही पहचान जाते थे। और सारा काम रोककर गर्मजोशी से उठकर स्वागत करते थे....पूछते थे.....कैसे हैं ? फिर सूत्र की गतिविधियों के साथ लेखन के संबंध में खूब सारी बातें किया करते थे। कभी कभी खुद से अपनी नयी लिखी कविताएं भी पढ़ कर सुनाया करते थे।

लाला जी का कवि निवास यानी कि उनका कमरा मेरी दृष्टि में एक ऐतिहासिक कमरा है क्योंकि लालाजी ने यहां अपना सारा जीवन बिताया, और यह कमरा लाला जी के अपार लेखन का सिर साक्षी भी है। इस कमरे ने लाला जी की कलम से बस्तर के समग्र जीवन को शब्दों में मुखरित होते देखा है....हम लिखने पढ़ने वालों के द्वारा लाला जी का कमरा कभी विस्मृत

नहीं किया जा सकता। अब जब कि लालाजी नहीं है उस कमरे को देखने की हिम्मत तक मुझ में नहीं है। अब जाऊंगा तो लाला जी को कहां ढूंढुंगा, शायद इसलिए लाला जी के निधन के बाद कवि निवास के उस कमरे में मैं आज तक नहीं पहुंचा। जबकि लालाजी के उस कमरे से सटे कमरों में लाला जी के छोटे भाई के परिवार के लोग रहते हैं। उनसे भी मिलकर यह पूछने की हिम्मत मुझ में आज तक नहीं बन पाई थी कि लाला जी का वह कमरा अब किस हालत में है। उनकी किताबें, पत्रिकाएं, पुरानी बेंत की कुर्सी और वह हैंगर जिसमें लाला जी के कपड़े टंगे हुआ करते थे, अब कैसे हैं ?

लाला जी ने जब लिखना प्रारंभ किया था तब जगदलपुर एक छोटा सा कस्बा हुआ करता था। लालाजी ने जगदलपुर शहर को अपने नाम के साथ जोड़कर एक नई पहचान दी..... लालाजी को जानने वाले जानते हैं कि जब तक लालाजी स्वस्थ थे तब तक वे हर शाम बिना नागा जगदलपुर की सड़कों में पैदल निकल जाया करते थे। जब तक उनका मन नहीं भरता तब तक इस चौराहे के शहर में घूमा करते थे। जान पहचान वालों से भी लालाजी अक्सर यहीं सड़कों में घूमते हुए मिला करते थे और चलते–चलते साहित्यिक चर्चा भी किया करते थे। जब उम्र ने साथ देना बंद कर दिया तब से वे अपने कमरे में ही सीमित होकर रह गए थे। जगदलपुर की सड़कों में पहले की तरह न घूम पाने का मलाल उनके मन में खूब था। जब कभी भी मैं उनसे मिलने उनके पास पहुंचा तो उन्होंने अपनी इस व्यवस्था पर मेरे सामने दुख ही प्रकट किया। कहते थे, विजय सिंह! शरीर अब साथ नहीं देता अन्यथा अभी यहां से उठकर जगदलपुर की सड़कों को दौड़कर छू लेता। जानते हैं विजय सिंह! मैंने बहुत सी कविताएं जगदलपुर के चौराहों, सड़कों में घूम–घूम कर ही लिखी हैं।

लालाजी जब से कमरे में सीमित हुए तब से उनकी याददाश्त भी धीरे–धीरे जाती रही, उनको अकेलापन भी बहुत सताने लगा था। एक बार मैं उनसे मिलने गया तो कहने लगे, अपना खुद का परिवार होना चाहिए। भाई के परिवार के लोग उनका ख्याल तो रखते हैं फिर भी कितना ख्याल रखेंगे! कहके लंबी सांस लेके हंसने लगे थे। लालाजी को जब कम सुनाई

देने लगा था, तब उनके पास एक नोटबुक रखी हुई थी जिसमें आने जाने वाले से लिख कर बात किया करते थे। तब भी वे लेखन के लिए उतने ही चिंतित दिखाई पड़ते थे जितने की भी प्रारंभ से थे। कविता, मंच में जिस तन्मयता और उत्साह से पढ़ते थे, वह देखते और सुनते ही बनता था। जब भी आप अपनी किताब उनको दें, वे पढ़कर त्वरित ढंग से उस पर अपनी प्रतिक्रिया भी देते थे। बस्तर के लेखन को लेकर कभी–कभी उदास हो जाया करते थे, कहते थे कि लोग एक–दो दिन के लिए बस्तर आते हैं और बस्तर के लिए सिद्धहस्त लेखक बनने का दावा करते हैं। यह बहुत दुखद स्थिति है।

बस्तर के समग्र लोक संस्कृति, इतिहास, पुरातत्व, रंगकर्म पर पैनी नजर रखने वाले लालाजी ने 15 वर्ष की उम्र से ही लिखना प्रारंभ किया था। शहर के तत्कालीन वरिष्ठ साहित्यकार गंगाधर सामंत, ठाकुर पूरन सिंह, पंडित केदारनाथ ठाकुर आदि के सानिध्य पाने के लिए उन्होंने स्वयं पहल की थी। शानी जैसे चर्चित कथाकार की पहली कहानी लालाजी ने ही अपने संपादन काल में प्रकाशित की थी। और शानी को समर्थ कथाकार बनाने में उनका बड़ा योगदान था। इस योगदान को कथाकार शानी जी भूले नहीं। जब उनके उपन्यास 'काला जल' पर सीरियल का निर्माण हो रहा था उसी सिलसिले में एक बार दिल्ली से वे जगदलपुर आए हुए थे। और जगदलपुर के सीरासार मंच में उनका सम्मान कार्यक्रम था। लालाजी दर्शक की सीट में बैठे हुए थे। सम्मान कार्यक्रम में फूल माला से जैसे ही शानी जी का सम्मान किया गया, शानी जी मंच से उतरकर सीधे लाला जी के पास आए आ गए और फूल माला से लाला जी का सम्मान किया। और कहा, सम्मान के असली हकदार तो लालाजी हैं..... इस संदर्भ को अक्सर लालाजी उत्साह से सुनाया करते थे।

बस्तर के प्रति उनके भीतर अंदर अगाध प्रेम था और इसी प्रेम की अदम्य आकांक्षा ने उन्हें बस्तर का कालजयी लेखक बनाया। अपनी सादगी सहजता को हमेशा केंद्र में रखकर उन्होंने कलम चलायी। सच्चा सीधा–सादा लेखन लालाजी की रचनाओं को जीवन से जोड़ता है। रचना को कैसे अपनी जड़ों से जोड़ा जाए यह सलीका लालाजी ने ही हमें सिखाया। उनका

मानना था लेखक होना, बड़ा होना है, जिम्मेदार होना है।

उनके निधन के पांच महीने पहले मैं उनके घर गया था। पहले तो वह मुझे पहचान नहीं पाए फिर जब नोटबुक में मैंने अपना नाम लिखकर दिया, तो उन्होंने उठकर मुझे गले से लगा लिया। और बार–बार कहने लगे– 'मुझे माफ कर दो, इस बुढ़ापे ने मुझे एकदम लाचार सा बना दिया है, देखा, मैं किसी को पहचान भी नहीं पाता। यह उम्र कुछ ज्यादा ही बेरहम हो गई है। कई बार बाथरूम जाते–जाते गिर जाता हूं।' फिर वह अपनी कलाई दिखाने लगे जिसमें गहरा जख्म दिखाई दे रहा था। फिर लालाजी ने अपना संग्रह (जो 'गीत धनवा' कुछ दिन पहले छप पर आया था) मुझे दिया, कहने लगे –'यह तुम्हारे लिए है।'

गीत और ग़ज़लों का यह कविता संग्रह देखकर मैंने लालाजी की नोटबुक में लिखा 'लालाजी! एक कविता पढ़कर सुनाइए न!' लालाजी अपनी पोपली दाढ़ों से हंसने लगे और कविता पढ़ने लगे। उस दिन लालाजी से यह गीत सुनकर घर लौट आया था.....आज भी लाला जी को याद करते हुए लगता है कि अभी अभी उनका गीत सुनकर लौट रहा हूं.....।

नहीं इच्छा कि सुलझे कंठ महफिल तक पहुंच जाऊं
नहीं इच्छा कि गा गा कर किसी के दिल तक पहुंच जाऊं
तमन्ना सिर्फ इतनी है कि लम्बी राह ये कट जाये
मजे से गुनगुनाता गीत मंजिल तक पहुंच जाऊं।

विजय सिंह
संपादक– 'समकालिन सूत्र'
बंद टॉकीज रोड, जगदलपुर
मो.–9424285311

लाला जगदलपुरी एक विलक्षण व्यक्तित्व और अद्‌भुत वैविध्य सार कृतित्व

जब यह दो शब्द व्यक्तित्व एवं कृतित्व सामने आते हैं, तो आकार लेता है, स्पष्ट होता है एक ऋषि तुल्य मानवीय स्वरूप का, वह होता है **लाला जगदलपुरी**!

सन 2001 में हाईवे चैनल में मेरा एक लघु आलेख 'लाला जगदलपुरी एक व्यक्तित्व और कृतित्व' प्रकाशित हुआ। मेरे परिचित, अध्यापक वृंद से कहीं कोई प्रोत्साहन के दो शब्द को तरस गया। ऐसे में लालाजी 18 नवंबर एक दिन बाद मेरे घर के सामने थे। मैं हतप्रभ सा हुआ, फिर उन्हें बिठाया । वो इतने प्रसन्न आनंदित थे मैं उसे व्यक्त नहीं कर पाऊंगा। उनकी प्रसन्नता, निश्चल, निर्मल प्रेम का प्रतिसाद जो मुझे मिला, मैं कभी भूल नहीं पाऊंगा। फिर जो धाराप्रवाह उनका मेरे परिवार से जुड़ी बातों का प्रवाह अनवरत चलता रहा, तब लगा जिन्हें में नितांत अपरिचित समझता था वह मेरे कितने अपने हैं।

लाला जी एक ऐसे विराट विटप लगे मुझे जिसकी शाखाएं, प्रशाखाएं, टहनियां, पत्र–दल, असंख्य झूलते स्तंभ मूल वो सघन समष्टि का वांग्मय स्वरूप था जिससे बस्तर का कण–कण मुखरित था, स्पंदित था। समूचा बस्तर, उसके हर आयाम, भाषा बोली, इतिहास, जनजातीय जीवन, उनके विभेद, संस्कृति, जीवन शैली, बस्तर राज्य के विभिन्न राजवंशों का उल्लेख, उनकी पीढ़ियां, बदलते राजनीतिक परिवेश, आधुनिक बनता बस्तर, योजना, परियोजना, क्या नहीं; कुछ भी न छोड़ा इस कृषकाय दधिची ने। उस जमाने में बस्तर को इतनी शिद्दत से उकेरना इतना सहज नहीं था। उस समय बस्तर महाकांतर, बीहड़ वनाच्छादित बस्तर में एक तपस्वी की तरह बस्तर की समस्त विशेषताओं को अपने में समेटे, उन पर अपना पांडित्यपूर्ण अधिकार के साथ सिद्ध किया कि यह उनकी कर्मठ साधना, गहन अध्ययन, साहित्यिक बस्तर के लोक, मौखिक साहित्य को अपनी साहित्य कृति के स्वरूप में ढालकर एक पहचान दी। लेखनी दी। बस्तर के इस मानस पुत्र,

भूमि पुत्र, वनपुत्र ने अभावों सुविधारहित जीवन जीते हुए अलौकिक बस्तर को दर्पण में उतारा। इस ज्ञानवृक्ष की छांव तले अनेक उपकृत हुए उनकी रचनाओं को अपने अधिकार एवं नाम के साथ भुनाकर आगे निकल गए, परंतु यह बस्तर का कुंदन अपनी सात्विक चमक से आखिर तक चमकता रहा। न मलिन हुआ, न क्लांत, यद्यपि ऐसे लोगों के कारण ही उनकी निरभ्र निर्मलता पर एक धुंध सी छाने लगी। सहज में विश्वास अपनत्व में जीने वाले लाला जी में भी शंका, संदेह की धूमिल रेखा खिंच गई, उनमें वह सहजता सरलता नहीं रही। उनके बालमित्र भी रहे, सहपाठी भी रहे परंतु सब से दूरी बनाए रखते। एक छोटा सा बच्चा 'त्रिलोक महावर' जो आगे चलकर बड़ा अधिकारी बना, लालाजी का उस पर अटूट प्रेम था, आखिर तक रहा। दोनों का संबंध इतना निश्चल, सहज, प्यार भरा होता था कि देखकर मुझे पीड़ा भी होती थी कि एक अध्यापक जो उनसे नहीं कमा सका, उनके छोटे से छात्र ने उन्हें इस तरह जीता, जैसे पूरा आसमान उसकी बाहों में सिमट आया था।

उनके साथ अपनी बातों का एक वीडियो शूट कर लिया। जब उन्हें दिखाया गया तो शिशु सुलभ मुस्कान से पूरा चेहरा उनका चमक गया। अनेक विषमताओं, घात–प्रतिघात, स्वार्थ भरे लोगों से घिरा रहकर भी यह ऋषि न आहत हुआ न टूटा। इस तपस्वी का जीवन जितना सीधा कष्टमय रहा, साहित्य सृजन उतना ही तीव्र प्रगल्भ रहा। विचार विमर्श, मंथन का प्रबल प्रचंड महासागर ही रहा।

जब भी लालाजी उस बच्चे से बातें करते चटाई में बैठकर, तो अनायास मुझे अपने घर में टंगी तस्वीर, सूरदास एवं बालकृष्ण की सामने दिखती। घनी भौहें, बड़ी–बड़ी पनीली आंखें, देवोमय 'शिशु सुलभ' कृष्ण साम्यता ऐसी कि सूरदास का सूरत्व एवं कृष्ण का अलौकिक स्वरूप कभी विभेदित नहीं रहा। कब यह बच्चा स्कूल कॉलेज और प्रोफेसर फिर एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में बदल गया परंतु संबंध वही मित्रवत बना रहा। बच्चे के साथ वह दलपत सागर के किनारे, महादेव घाट के किनारे घंटों परिचर्चा में लीन रहते। वहीं एक बार उनकी एक परिचर्चा रिकॉर्ड कर और बाद में वीडियो शूट कर उन्हें दिखाया, सुनाया था। मैंने भी देखा सुना था परंतु

उनके चेहरे पर शिशु सुलभ स्मित हास्य मैं भूल नहीं पाता हूं। आज लगता है कृष्ण अनुग्रह की तरह उस कद्दावर कमिश्नर ने शासन प्रशासन को बस्तर के मूर्धन्य बाणभट्ट, कालिदास को परिचय के उस विंध्याचल का सृजन कर डाला, जिसकी परिणति आज जगदलपुर शहर के हृदय स्थल पर 'लाला जगदलपुरी जिला ग्रंथालय' के रूप में हुई। इसकी प्रारंभिक रूपरेखा का एक संवेदनशील, ज्ञानपिपासु, प्रतिभा परख कसौटी रूपी जिलाध्यक्ष डॉक्टर अयाज भाई तम्बोली ने ब्लू प्रिंट तैयार किया। डॉक्टर अयाज भाई तम्बोली बस्तर संभाग के लिए स्वास्थ के मसीहा थे। जगदलपुर व बीजापुर में स्वास्थ सेवाओं को देखकर यही प्रतीत होता है।

बस्तर स्टेट के पुराने मालगुजार घराने के वन विभाग में पदस्थ एवं स्वर्गीय पिता श्री राम लाल श्रीवास्तव एवं स्वर्गीय जीराबाई के घर बालक लालाराम ने जन्म लिया। जिसने अपने परिवेश, बस्तर की धरा माटी से अभिप्रेरित हो, लिखना शुरू किया। असहाय धर्मपरायण निराश्रित मां तथा छोटे भाई बहनों का सहारा बन उन्हें लायक बनाने उनका घर बसाने का संकल्प लेकर उसे पूरा किया। स्वयं अविवाहित रहे। साहित्य सृजन कविता से उनका गठबंधन सा था, वह लिखते रहे।

सन 1938 में एक 19 वर्षीय युवा कवि की पहली कविता मुंबई के प्रतिष्ठित समाचार पत्र 'श्री वेंकटेश्वर' में प्रकाशित हुई लाला जगदलपुरी के नाम से। और तब से यह नाम उनके व्यक्तित्व कृतित्व के साथ स्थाई होकर चलता आ रहा है। आज उनकी भौतिक काया हमारे सामने नहीं है परंतु उनका नाम उनकी कृतियों के साथ बस्तर छत्तीसगढ़ की धरा पर शिलालेख की तरह सदियों तक चलता रहेगा। इस तरह उनका रचना संसार का श्रीगणेश हुआ। विषमताओं प्रतिकूलताओं से जूझते उनका प्रयास जारी रहा। वह कविता में और कविता उन में समाई हुई थी। वह कहते स्वयं के लिए कि –'जब कोई कवि अपनी चिंतनशीलता भाव अभिव्यक्ति के झंझावात में घिरा नितांत अकेला हो जाता है तो रसमयी सरस कविता उसके अंतर में समाहित हो उसकी वास्तविकता से जुड़ कर आत्मीय अभिव्यक्ति ना होकर समग्र समष्टि में व्याप्त हो जाती है। यही सत्य और सौंदर्य की अभिव्यक्ति ही प्रांजल परिष्कृत कविता होती है जो कवि के अंतरतम के सुप्त प्रेम

रसानुराग की अभिव्यक्ति भी होती है। एक बार शुरू हुआ उनकी रचना संसार का श्रीगणेश विषमताओं प्रतिकूलताओं से जूझते हुए जारी रहा। उस समय बस्तर को लिपिबद्ध करना इतना सहज नहीं था। आज भी एक चुनौती है। कहीं उन्होंने लिखा भी था कि –'शब्द चयन, रचना जन्म तथा भाषा का धर्म स्पष्ट होता है साहित्य सृजन में और यही एक शब्दशिल्पी, रचनाकार का गूढ़ रहस्य होता है।' जो सिर्फ और सिर्फ लाला जी जैसे शिल्पी ही गढ़ सकते थे। उस समय का बस्तर संस्कार संस्कृति और साहित्य में कहीं ज्यादा शुचि परिमल पांडित्य संपन्न था जो आज की अनेकों सुविधा संपन्न, धनी बस्तर से कहीं अधिक परिष्कृत था। शिक्षा जगत में अच्छे–अच्छे मेधावी छात्र भी इतनी त्रुटियां कर जाते हैं। यहां तक शोधार्थी भी। वहीं एकल वितरागी भीष्म पितामह, लाला जी की पुरानी कृ तियों में भी कहीं मात्राओं में, शब्द चयन, वाक्य विन्यास में स्फटिक सी स्पष्ट शुद्धता परिलक्षित है। वे कहते थे मैं अनुशासित, मर्यादित, सार्थक, बोधगम्य नवलेखन का पक्षधर हूं। मेरी कृतियों के बिंब, प्रतीक, अलंकार सामान्य पाठक के लिए अजनबी नहीं होते, उनके जाने पहचाने होते हैं। भाषा को रूपायित करने तथा कथ्य को नित नई अभिव्यक्ति देने का प्रयास करता रहता हूं। मानवतावादी जीवन दर्शन एवं संवेदना से प्रतिबद्ध मेरी लेखनी अपने रचना संसार से आगत एवं विगत के जीवन संदर्भों के मध्य एक सेतु का काम करती है। मेरी रचना धर्मिता परिवेश, समाज, राष्ट्र के प्रति दायित्व का निर्वाह करती है। त्रासद समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश एवं संत्रस्त समाज की आश्वस्ति की अभिव्यक्ति के लिए उनकी लेखनी संकल्पित रही, तत्पर रही। राजनीति के पक्षधर वह नहीं थे परंतु राजनीति का संतुलन समन्वयन स्वरूप के पक्षधर रहे।

लालाजी ने सबसे पहले बस्तर जिले के स्वतंत्र हिंदी पाक्षिक 'अंगारा' और हल्बी साप्ताहिक 'बस्तरिया' का संपादन कर साहित्यिक एवं आंचलिक पत्रकारिता का कीर्तिमान स्थापित किया। इसी तरह लोक संगीत, बोली मौखिक वाचिक विधाओं को आंचलिक साहित्य की लेखनी दी। कभी–कभी कष्टसाध्य बस्तर अंचल की समस्त साहित्य सृजन की प्रसव वेदना झेलकर

भी मातृत्व सुख की अद्‌भुत अनुभूति आनंद को गूंगे की तरह गुलगुलाते रहे परंतु लोगों का उनकी वैशाखी को टेक साहित्य पोथियों से अपना नाम व धन कमाने की कुचेष्टा उन्हें बौखला जाती, विचलित कर जाती। कभी कभी क्रोध से भर कर विद्रूपताजन्य विकृत चेहरे पर एक हास्य की स्मित रेखा के साथ मुस्कुराते हुए कहते –'बाबू! आज हमने जो बस्तर के लिए श्रमसाध्य रचनाकर्म किया, उसे भुना डाला महानगरों में बैठे कुछ साहित्य धर्मी, रचनाकर्मी व्यवसायीक अरण्य संस्कृति, आदिवासी उन्मुक्त जीवन को भ्रामक, तोड़ मरोड़कर अपसंस्कृति के रूप में पेश कर उपाधियों, मानकों से लैस होकर दिगदिंगत में अपने नाम का डंका बजा गए। लाला जी के काम का लेखा–जोखा का आंकलन कर बड़े–बड़े महाजन बन गए। उनका हंसते हुए यह कहना कि 'कनकी फुटू' (फेयरी रिंग्स) की तरह उग आए साहित्य सर्जकों को उन्होंने बड़े ही मजेदार ढंग से श्रेणीबद्ध किया, जो 4 वर्ग में विभक्त हैं। व्यवसायी कवि, अफसर कवि, नेता कवि और फक्कड़ कवि! वास्तव में उस समय अफसर कवि, फक्कड़ कवियों के समूह से जुड़कर अफसरशाही गंगा में आजतक आचमन कर रहे हैं, डुबकी लगा रहे हैं।

बस्तर और वनपुत्रों की हमेशा चिंता रहती थी वह उनकी लंगोटी जो फटी हो कर भी उसे तुष्ट रखती, कंठ गा रहा है, चेहरे पर उत्फुल मुस्कान है, कल की चिंता उसे नहीं कि भोजन है या नहीं। लाला जी को बस्तर का ये लोकजीवन, वनवासी जीवन दर्शन जो विषमताओं, विद्रूपताओं से भरा हुआ है, पर वनवासी इस दुख को सुख की तरह जी रहा है –यह जीवन दर्शन कितना प्रेरक है, ये प्रश्न यक्ष प्रश्न की तरह उन्हें व्यथित, आकुल, आंदोलित करते रहते। उनकी यह व्यथा जो 68 वर्षों का निचोड़ रहा इस ऋषि ने नितांत अकेले भोगा, और तब जाकर उन्हें इस साहित्यिक अवदान, लोक संस्कृति, भाषा बोली के सत्प्रयास पर छत्तीसगढ़ शासन द्वारा प्राप्त 'पंडित सुंदरलाल शर्मा सम्मान!'

यह सम्मान इस धरापुत्र के लिए आस्कर सम्मान से ऊंचा मानता हूं। जिस बस्तर का यह अनमोल कोहिनूर सम्मानित हुआ इस सम्मान से, उन्हीं छत्तीसगढ़ गौरव पंडित सुंदरलाल शर्मा का भी बस्तर, पुराने मालगुजार

पंडित गंगाधर दुबे (रिटायर्ड जी एफ ओ) के ससुर होने का भी गौरव प्राप्त था। इससे सम्मान पद कद का महत्व सहस्त्र गुना बढ़ गया। यह सभी बस्तर के निष्ठावान, ईमानदार पुराने रहवासी लोगों का सर्वोच्च सम्मान ही कहा जाएगा। नेता, मंत्री अनेक आते उनके घर परंतु पूरा परिवार सम्मानित हुआ गौरवान्वित हुआ इस सम्मान से। इस प्रयास में उन्हीं के परिवार के विनय श्रीवास्तव, उनकी धर्मपत्नी एवं त्रिलोक महावर, स्वर्गीय रऊफ परवेज़, मदन आचार्य, जगदीश चंद्र दास, एम ए रहीम का नाम भी लेना जरूरी है। ये वो समिधाएं हैं जिनके बिना इस महायज्ञ की पूर्णता, उद्यापन संभव नहीं है। उनके सहपाठी बंसी लाल विश्वकर्मा को भी भुलाया नहीं जा सकता। इन्होंने वार्धक्य से जूझते लाला जी को एक आसंदी दिया, अस्तामा दिया। जहां ये फकीर अपनी सक्रियता का अलख जमाए रमा रहा अंत तक।

अपनी पुस्तक बस्तर इतिहास एवं संस्कृति में उन्होंने लिखा है – 'प्रकृति की खुली पुस्तक में मैंने बस्तर के विगत वनवासी जीवनदर्शन, आदिम परंपराओं का थोड़ा सा आत्मीय अध्ययन किया है। एक ऐसा लोकजीवन मेरी सृजनशीलता को प्रभावित करता आ रहा है, जिसने जाने अनजाने प्रबुद्ध समाज को बहुत कुछ दिया, जिसका मौकापरस्त स्वार्थी लोगों ने भरपूर लाभ लिया।

उनकी प्रकाशित कृतियां चौदह हैं, और इतनी पांडुलिपियां जो समेटे न समटें। तीन कविता संग्रह, लोककथा संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त हल्बी–भतरी बोलियों पर भी संस्कृत, फारसी, हिंदी शब्दों का प्रभाव, छत्तीसगढ़ी बस्तरी में समानता, इतनी बारीकी से उन्होंने लिखा है, समझाया है, अद्‌भुत है।

बस्तर को अपने साहित्य दर्पण में उकेरने वाला यह यति बदलते राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक परिवेश पर भी पैनी नजर रखता था। उनकी यह विशिष्टता ही बस्तर में उन्हें एक दर्शन शास्त्री, कर्मयोगी, शिक्षाशास्त्री, बस्तर के जनमानस के हृदय आसन पर स्थापित अमूल्य रत्न है। इस भगीरथ ने बस्तर की धरा पर साहित्य गंगा की प्रांजल परिमल अजस्त्र धाराओं को प्रवाहित किया है, यह पुनीत प्रवाह चंड प्रचंड वेग से प्रवाहित होती रहे, साहित्य का सृजन करती रहे, साहित्य बीजों का सृजन

करती रहे।

शायद यह कर्मठ तपस्वीसम व्यक्तित्व का प्रभाव ही है जो आज लाला जगदलपुरी जिला ग्रंथालय की तरह सदियों तक अक्षत स्वरूप लिए रहेगा।

इसके साहित्य पटेल को निरंतर आगे बढ़ाने में कुछ निष्ठावान व्यक्ति हैं जो निरंतर उनकी धूनी रमाए बैठे हैं।

एक अच्छे त्यागी पुरुष के अवदान के आगे दैव इच्छा भी कृपा कटाक्ष करती ही है, शायद इसलिए फिर से प्रभारी सचिव डॉ अयाज तम्बोली का आना एक शुभ संकेत है।

बी एन आर नायडू
सेवानिवृत्त प्राचार्य
जगदलपुर बस्तर
मो.–9424280113

भेंट में दी गई वस्तु वापस नहीं ली जाती : यादों के टुकड़े

लाला जगदलपुरी जी ने अपनी परेशानी मुझसे बताते हुए कहा कि –'मैं प्रेमचंद की कहानियों का हल्बी में अनुवाद करना चाहता हूं लेकिन कहानियां मुझे मिल नहीं रही हैं।' मैंने कहा –'लाला जी! मेरे पास प्रेमचंद की कहानियों का विशेषांक है। मैं आपको दूंगा।' वह बोले –'अनुवाद पूरा होते ही मैं आपको विशेषांक वापस लौटा दूंगा।' तब मैंने कहा कि –'लालाजी! इसे आप मेरी ओर से भेंट समझिए।'

उसी दिन शाम को मैंने सारिका का वह दुर्लभ विशेषांक लाला जी के घर पहुंचा दिया। इस वार्तालाप को तकरीबन छह माह से अधिक हो गए थे व मैं भी इस बात को भूल चुका था। मैंने गणपत लाल साहू 'बिलासपुरी' द्वारा लिखित किताब 'बस्तर का खूनी इतिहास' लालाजी से पढ़ने के लिए लाया था कि उस पुस्तक को कोर्ट के एक बाबू ने पढ़ने मांग लिया था। एक दिन लाला जी के तकाजे पर मैंने बाबू से पुस्तक वापस लौटाने को कहा, तो उसने उत्तर दिया कि –'कोर्ट साहब को मैंने पुस्तक पढ़ने दी थी उनका तबादला हो जाने पर वे अंबिकापुर चले गए हैं।'

मुझे काटो तो खून नहीं। लालाजी को इस बात को मुझे बताना पड़ा तो वे काफी नाराज हुए क्योंकि वह पुस्तक आउट ऑफ प्रिंट हो चुकी थी। मैंने भी तनाव में कह दिया कि –'लाला जी! आपने भी तो मुझे सारिका का प्रेमचंद विशेषांक वापस नहीं लौटाया है। तब लालाजी ने धीर गंभीर स्वर में मुझसे कहा कि –'भेंट में दी गई चीज वापस नहीं ली जाती।'

मैं निरुत्तर हो गया। यह घटना मेरे जीवन में दर्ज है जिसने मुझे बहुत ही बड़ी सीख दी।

दूसरी घटना है– हम सबने लाला जी का जन्म दिवस बड़ी धूम–धाम से मनाया। वापसी के वक्त लाला जी को घर छोड़ने एक सज्जन अपनी एंबेसडर कार लेकर आए। वे कार का दरवाजा खोल दिये।

लालाजी ने तब अत्यंत विनम्रता से कहा कि –'मैं चला जाऊंगा।' उसी

समय, मौके पर उपस्थित पत्रकार बसंत अवस्थी जी ने लाला जी को मीठी झिड़की देते हुए कहा कि –'अरे! आज के दिन तो बैठ जाओ। मना मत करो।' तब लालाजी के चेहरे पर किंचित मुस्कान आई और वे अपनी धोती संभालते हुए कार में बैठ गए।

ऐसे ही खट्टे मीठे कई संस्मरण हैं। लालाजी ने बस्तर पर एक किताब लिखी जिसका प्रकाशन बंशीलाल विश्वकर्मा ने किया था। पुस्तक प्रकाशन को अभी तीन दिन ही बीते थे कि मैं तपाक से लाला जी के कवि निवास जा पहुंचा और कहा कि –'लाला जी! मैं आपकी पुस्तक की समीक्षा करना चाहता हूं।' तब लालाजी बोले –'आप मेरे लिए इतना कष्ट क्यों करेंगे।' तब मैंने कहा –'लालाजी! मैं एक पत्रकार भी हूं। समाज में कोई भी घटना घटित होती है तो उस पर प्रतिक्रिया देना मेरा कर्तव्य है।'

तो मुस्कुराते हुए उन्होंने सहर्ष मुझे इसकी अनुमति दे दी। मेरी समीक्षा नवभारत के रविवारीय अंक में छपी। लालाजी ने उसे पसंद करते हुए मेरी पीठ ठोंकी और मुझे भेंट में पुस्तक 'मणि मधुकर की श्रेष्ठ कहानियां' दी थी। रामदेव भोपाल से गीतों पर केंद्रित एक पत्रिका 'संकल्प रथ' निकालते थे। छत्तीसगढ़ के सभी प्रमुख रचनाकार गीतकारों पर उन्होंने केंद्रित विशेषांक निकाला था। मैं हर रविवार को लालाजी से मिलता था फिर उनसे संकल्प रथ के अंक मांग कर पढ़ने ले जाता था। गीतकार विधा विद्या भूषण मिश्र (दुर्ग), नारायण लाल परमार (धमतरी), बद्री विशाल त्रिवेदी (बलोदा बाजार) और लाला जगदलपुरी (जगदलपुर) पर केंद्रित दुर्लभ अंक राम अधीर ने निकाला था, जो मुझे लाला जी के सौजन्य से पढ़ने मिला।

स्वयं पर केंद्रित अंक की एक प्रति उन्होंने जनाब रऊफ परवेज़ को भेंट की थी व मुझसे कहा कि –'परवेज़ जी ने अपना ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित होने पर मुझे उसकी एक प्रति भेंट की थी, तो मुझे भी तो उन्हें प्रति देनी पड़ेगी।'

बस्तर की लोकोक्तियों पर भोपाल से लक्ष्मी नारायण पयोधि एक पुस्तक लालाजी की प्रकाशित कर रहे थे। तब केवल पुस्तक का प्रूफ देखने लालाजी एक से अधिक बार भोपाल गए थे। उन्होंने मुझसे कहा –'पुस्तक प्रकाशित हो जाने के बाद त्रुटियां नहीं बीनी जा सकती हैं। इस उम्र में रेल

का लंबा सफर काफी कष्टप्रद है लेकिन यह जरूरी भी है।

मैं उनकी प्रतिबद्धता के आगे नतमस्तक था। इसी से प्रेरित होकर गोष्ठियों में काव्य पाठ करने के पहले ही मैं उन्हें अपनी रचना दिखा कर जांच करवा लेता था। एक गोष्ठी सदर स्कूल में थी। संचालक ने काव्यपाठ हेतु मेरा नाम पुकारा था। मैंने अपने कताह (रुबाई) की पहली पंक्ति पढ़ी– मेरी आंखों में वीरानी का समां देखें। इस पर तुरंत मुझे गोष्ठी में टोकते हुए कहा कि –'उसे वीरानी का शमा कर लें।' इस पर जनाब परवेज ने कहा कि –'शर्मा जी! जवाब दीजिए।' तब मैंने कहा कि –'लाला जी! मैंने यहां पर समां के मायने 'दृश्य' से लिया है।

तब लालाजी ने कहा –'मुझे क्षमा करें। आप सही हैं।

मैंने यह देखा कि महान व्यक्ति गलत होने पर कैसे उसे स्वीकार करते हैं। इस घटना ने मुझे भी अंतर्दृष्टि देकर विनम्र बनाया।

गोल बाजार की तिवारी बिल्डिंग के पास शाम के वक्त तकरीबन 7:00 बजे मुझे लाला जी मिल गए। वह मुझे रोक कर बातें करने लगे। अत्यंत खुश होकर उन्होंने कहा कि –'ऐसी ही मुलाकात अच्छी होती है।' फिर उन्होंने मुझे अपनी घरेलू परेशानियां बताने लगे। उन्होंने कहा कि –'मेरा भाई मुझे बहुत परेशान कर रहा है।' तब मैंने कहा –'लालाजी! परसाई जी ने अपने एक व्यंग्य आलेख में लिखा है कि केवल अपने भाई को छोड़कर सारी दुनिया भाई नजर आती है।' इस पर लाला जी का उन्मुक्त ठहाका ऐसा छूटा कि आसपास के राह चलने वाले भी मुस्कुरा उठे।

लालाजी को नरेश मेहता के साथ उनके लेखन हेतु एक लाख का पुरस्कार संयुक्त रूप से मिला था। तब उन्होंने रास्ते में मुझसे कहा था कि –'हम तो दो लाख रूपये को भी लाख (एक कीड़े के द्वारा बनाया गया घर) ही समझते हैं।' बात आई गई हो गई। मैं घर आया और कपड़े बदल कर भोजन करने की तैयारी कर ही रहा था कि देखा दरवाजे पर लालाजी खड़े हैं। मैंने कहा –'लालाजी! आप!' तब वह बोले –'मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, उसे अखबार में मत छाप देना।' मैंने कहा –'लाला जी! आप निश्चिंत रहें ऐसा नहीं होगा।'

एक बार वे अपने घर के बाहर आराम कुर्सी पर बैठे धूप का आनंद ले रहे थे। उसी समय मैंने पहुंचकर उनकी कविता (गीत) प्रकाशित होने पर बधाई दी। मुझे पता था कि उन्हें पत्रिका ने पारिश्रमिक भिजवाया है। मैंने कहा –'लाला जी! आप मिठाई खिलाइए, आपको पारिश्रमिक मिला है।'

इस पर ठहाका लगाते हुए उन्होंने कहा कि –'पारिश्रमिक जब पोस्टमैन से बचे तब तो रचनाकार खाए!'

उनकी उक्तियां अनुभवजन्य तथा खरी होती थीं।

अवध किशोर शर्मा 'अकिश'
स्टेट बैंक रोड
चांदनी चौक, जगदलपुर
बस्तर छ.ग. पिन–494001
मो.–7974469677

दण्डक वन का एक तपस्वी, सरस्वती साधक –लाला जगदलपुरी

धोती कुर्ता और बंडी(जैकेट) पहने एक मध्यम कद काठी का व्यक्तित्व किसी के ह्रदय में नहीं बस सकता, बग़ैर जाने यह है कौन? जी हाँ, यह ऊपरी पहचान है एक संत, एक विराट लेखकीय व्यक्तित्व लाला जगदलपुरी जी की। वास्तव में ऐसे थे वे.., वर्षा से धुले हुये आकाश–सा निर्मल व्यक्तित्व, बड़ी–बड़ी आँखों में तैरते संभावनाओं के इंद्रधनुष, उन्नत ललाट पर अनुभवों के शिलालेख। मैंने जब से उन्हें जाना तब से वे मेरे प्रणम्य हो गये, और बिना दीक्षा पाये ही अन्तर्मन से मैं उनकी शिष्या हो गई।

जगदलपुर में रहते हुये, उनसे मिलने मैं कई बार उनके घर गई। उनसे बड़ा स्नेह मिलता था। कुछ भी नया लिखती तो उन्हें दिखाने को आतुर रहती। समयांतराल अधिक होने पर जब जाती तो कहते, 'बहुत दिनों बाद आई हो इस बार, और क्या लाई हो?" उनका इशारा रचनाओं की ओर होता। मैं भी एक बच्चे की तरह रचनाओं की हस्तलिपि के कुछ कागज़ रख देती थी सामने। कम और छोटी रचनाएँ पढ़कर तुरन्त प्रतिक्रिया देते। अधिक होने पर कहते, "छोड़ जाओ, बाद में देखूँगा।" मेरी कई कविताएँ कहानियाँ और आलेख उन्होंने पढ़े। कमियों की ओर इशारा किया, लेकिन कभी अपनी कोई मंशा नहीं लादी। उन्हें मेरी मौलिकता पसन्द थी। मेरी बचपन में लिखी एक कविता थी,

"मेरा नाम किरण लता। कोई कहता किरण, कोई कहता लता। दो अलग अलग नामों की तरह, जिसे जो होता पता। किरण का मतलब तो तेज प्रखर, जुड़ा हुआ लता जाता है अखर।" पढ़कर वे पहले तो हँसे थे, फिर खुश होकर मौलिकता की दाद दी थी, इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानती हूँ। मेरे लेखन पर उनकी टिप्पणी उनके शब्द "लेखन दोष नहीं है तुममें, अभिव्यक्ति की कमी नहीं है, चिंतन और सोच समसामयिक है।" मेरे लिए अमूल्य उपहार हैं, और किसी प्रमाण पत्र से कम नहीं है।

उनके सानिध्य में ही मैंने बस्तर को जाना और समझा। छोटे बच्चे, वृध्द

पापा जी सहित एकल परिवार, एम पी ई बी की नौकरी, लेखन की अभिरुचि और आकाशवाणी कार्यक्रमों में सतत सहभागिता के चलते कुछ और जानने समझने के लिए समय ही नहीं बचता था। लालाजी मेरे लिए एक ऐसी पाठशाला थे, जहाँ मैंने बस्तर को जाना और समझा। वरना अठारह– साढ़े अठारह साल जगदलपुर में रहने के पश्चात भी शायद मैं बस्तर को उतने अच्छे से नहीं जान पाती, न ही समझ पाती। जब मुझे मौक़ा मिलता, उनके पास चली जाती थी। अक़्सर कार्यालयीन दिनों में, मध्यान्ह अवकाश के समय। जो होता तो आधे घंटे का था, पर अधिकांश कर्मचारी एक डेढ़ घंटे का मना लेते थे। ऐसा करना ग़लत है, यह जानते हुए भी, मैंने भी उसी धारा में बहकर, उसी परिपाटी का परिपालन करते हुए समय का सदुपयोग लाला जी का सानिध्य पाने में किया था। उनसे हर मुलाक़ात प्रेरक, रोचक और संस्मरणीय हुआ करती थी। कभी बस्तर की संस्कृति पर चर्चा होती थी, तो कभी लोकजीवन की। कभी लालाजी अंग्रेजों के अत्याचारों का ज़िक्र करते, तो कभी भूमकाल का दृश्य खींच देते थे। कभी बस्तर के राजाओं के बारे में बातें होतीं तो कभी राजघराने के बारे में। कभी वे बस्तर के तीज–त्यौहारों, उच्छब–परब के बारे में बताते तो कभी धार्मिक मान्यताओं रीति–रिवाजों की चर्चा करते थे। कभी बातें होतीं वनवासियों के अल्हड़पन की/ भोलेपन की, कभी उनके शौर्य और कभी शोषण की। कभी बस्तर के जंगलों, नदियों, पहाड़ों के बारे में बताते हुये सुंदर शब्द चित्र खींच दिया करते थे। उन्होंने बस्तर को इस तरह आत्मसात किया है कि उनपर चर्चा करते हुये, कुछ कहते हुये उनके शब्द पावन सलिल सरिता से निर्झर झरते थे। देखिये उनकी ये पंक्तियाँ ....

"मैं इंद्रावती नदी के बूँद–बूँद जल को निज दृग–जल की भाँति जानता आया हूँ।

मेरे मन–मंदिर के विग्रह क्षत–विक्षत पड़े, देखे बारसूर में जा कोई यायावर।

प्रतिपल दंतेवाड़ा में विनत शीश मेरा, बैलाडीला पर गर्वित उन्नत मेरा सर।

दुख जैसे पर्वत घाटी में संयोगी, सबकी सुन सुन जिनकी बखानता आया हूँ।

मैं इंद्रावती नदी..... जानता आया हूँ।

ऐसा श्रेष्ठ शिक्षक, ऐसा गुरु आज कहाँ मिलेगा! बस्तर संस्कृति इतिहास में विद्वता रखने के बावजूद कहते थे, कि "बस्तर इतिहास के यशस्वी साधक डॉक्टर के. के. झा के सत्संग का मैंने लाभ उठाया है।" मेरा सौभाग्य है कि बस्तर का इतिहास और संस्कृति का पाठ मैंने उनकी पाठशाला में पढ़ा।

हँसी की बात तो यह है, कि जो काम कॉलेज में कुछ शरारती या मनचले छात्र किया करते हैं, और जो मैंने अपने विद्यार्थी जीवन में कभी नहीं किया। वह मैंने एक वयस्क ज़िम्मेदार उम्र में किया। विद्यार्थी कॉलेज से अनुपस्थित होकर या प्रचलित भाषा में कहें, तो बंक मारकर अन्यत्र जाते हैं, पर मैं ऑफिस से बंक मारकर उनकी पाठशाला जाती थी। घर–गृहस्थी, नौकरी और अन्य दायित्वों के साथ तालमेल बिठाते हुये यह मजबूरी थी मेरी। अच्छा लगता था उनका सानिध्य। एक ऊर्जा मिलती थी उनसे मिलकर। पितृवत स्नेह भी मिलता था, जिसकी क्षुधा सदा सबको बनी रहती है।

लेखन की मात्रा नहीं, गुणवत्ता के पक्षधर थे लाला जी। बातों बातों में उन्होंने बताया था, कि उन्होंने सन 1936 में लेखन आरंभ किया, किन्तु 1939 में प्रकाशन में आये। उनके शब्द "रचना जब तक आत्मसंतुष्टि न दे, वह दूसरों को पसन्द कैसे आ सकती है! जब पाठक रचना से प्रभावित होकर उससे कुछ ग्रहण कर सके तो वह उपयोगी हो जाती है।" मेरे विचार में ऐसा ही लेखन सार्थक है। हममें से कई रचनाकार सतत लेखन के पक्षधर और प्रकाशन के महत्वाकांक्षी हैं। अनेक प्रकाशकों ने साझा संकलन छपाने का अच्छा ख़ासा व्यवसाय भी चला रखा है। ख़ैर... विषयांतर से बचते हुए आगे बढ़ते हैं। वे अपनी लेखन प्रक्रिया के बारे में कहते थे, " दिन भर बच्चे शोर मचाते हैं, रात को शब्द चिल्लाते हैं। जब तक पँक्ति से अयोग्य शब्द को पँक्तिमुक्त कर, उचित शब्द को सही स्थान पर न बैठा दूँ।" वे लिखते

थे, पढ़ते थे और अपनी रचनाओं को फाड़ दिया करते थे। इसलिये तीन वर्ष इस प्रक्रिया से गुज़रने के पश्चात वे प्रकाशन में आये। मैं भी इस मामले में उनसे अति प्रभावित थी। बचपन से लेखन की शुरुआत की। लाला जी ने मेरी रचनाएँ पढ़ीं सराहीं और राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं के पते भी बताये/लिखवाये, पर मैं प्रकाशन के प्रति उदासीन रही। उन्होंने तो यहाँ तक कहा था, "तुम अपना कविता संग्रह छपवाओ, भूमिका मैं लिखूँगा।" खेद की बात मैं उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं कर सकी। ईश्वर मुझे माफ़ करे।

वे वरिष्ठ रचनाकारों को सम्मान देते थे और नव रचनाकारों को प्रोत्साहन। उन्होंने आकाशवाणी जगदलपुर से प्रसारित एक रूपक 'बस्तर में हिंदी साहित्य', में बस्तर के प्रारंभिक साहित्यकारों से लेकर समकालीन साहित्यकारों के नामों का ज़िक्र कर किया है। साथ ही नव रचनाकारों में मोहिनी ठाकुर, पूनम विश्वकर्मा, आई. जानकी, उर्मिला आचार्य, मदन आचार्य, कौशिक, योगेंद्र मोतीवाला, रानू नाग, किरण लता वैद्य.. जैसे रचनाकारों के नाम का उल्लेखकर इन्हें भी बस्तर के साहित्यिक इतिहास में शामिल किया है। बस्तर पर शोध कर रहे छात्रों को शोध सामग्री उपलब्ध कराई, लेकिन उनकी सरलता और सहजता का लाभ उठाकर कुछ महत्वाकांक्षी लोगों ने उन्हें अक़्सर छल किया, और प्रदत्त सामग्री नहीं लौटाई। उन्होंने कई बार मुझसे यह ज़िक्र किया। कभी–कभी इस पर व्यंगात्मक ढंग से हँसते भी थे, जिसमें बेबसी और दर्द स्पष्ट झलकता था। मुझे भी उन्होंने पुस्तक 'झाँपी' पढ़ने को दी थी। पंद्रह– बीस दिन हो गये न मैं उनके पास गई, न ही पुस्तक लौटा पाई, तो उन्होंने उसी शंका में एक पोस्टकार्ड लिख भेजा था, स्नेहिल सम्बोधन के बाद की पंक्तियाँ .."उम्मीद है अब तक पुस्तक पढ़ ली होगी, कृपया लौटा दें। आवश्यकता है।" वह पत्र भी मेरे पास सुरक्षित है। ख़ैर.... भुक्त–भोगी रहे हैं, अतः सोच लाजमी थी। उसके पश्चात उन्होंने अपनी अधिकांश किताबें मुझे दीं, जो मैंने पढ़कर उन्हें लौटा दीं।

जगदलपुर में लंबे अरसे तक रहने के बावजूद वहाँ की साहित्यिक संस्था 'आकृति' को मैं चित्रकला केंद्र ही समझती रही, जो साहित्यिक

गतिविधियों का भी केंद्र भी थी। प्रथम बार ग्रीष्मकालीन अवकाश में, अपनी छः वर्षीया बेटी दीपिका को वहाँ भेजा। वहाँ लालाजी ने बंशीलाल विश्वकर्मा जी से मेरे नाम का ज़िक्र किया, फ़लाँ फ़लाँ नाम की लड़की अच्छा लिख रही। बंशीलाल जी 'वैद्य' सरनेम से शायद जान गये, और उन्होंने बिटिया से कहकर मुझे वहाँ बुलवाया। तब से मैं आकृति की सदस्य हो गई। जहाँ जगदलपुर के तमाम गुणीजनों, वरिष्ठ साहित्यकारों यथा लाला जगदलपुरी जी, रउफ़ परवेज़ जी, हुकूमदास अचिन्त्य जी, डॉ के के झा, डॉ बी एल झा, अवधकिशोर शर्मा, ऋषि शर्मा, डॉ सुरेश तिवारी आदि का सत्संग मिला। मदन आचार्य जी, किशोर दवे, विजय सिंह ,कौशिक जी, उर्मिला आचार्य, आई जानकी, रानू नाग भी यदाकदा आया करते थे। यहाँ आकर बहुत साहित्यिक लाभ उठाया, बड़ों का स्नेह पाया और मुखरित हुई। सुरेश विश्वकर्मा 'चितेरा' जी वहॉ चित्रकला सिखाते थे, और गोष्ठियों में भी शामिल हुआ करते थे। शरतपूर्णिमा पर गोष्ठी के बाद अक़्सर खीर खिलाते थे। उनके घर की बनी खीर का स्वाद आज भी याद है। जब तक मैं जगदलपुर में रही, आकृति संस्था से जुड़कर साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय रही। जगदलपुर के आसपास के ग्रामीण अंचलों की साहित्यिक संगोष्ठियों में सहभागिता की, और अपनी एक पहचान बनाई। एक बार दशहरा उत्सव पर कवि सम्मेलन में वरिष्ठ नामचीन साहित्यकारों के साथ मंच साझा किया। ये मधुर स्मृतियाँ मन को आज भी तरंगित करती हैं, उमंगित करती हैं। मेरे जगदलपुर कार्यालयीन प्रवास पर सन 2019 में, अनुज सनत जैन ने मेरे सम्मान में आकृति में एक गोष्ठी रखी थी, वो अवसर भी हृदयतल में अंकित है। वो स्नेह, वो अपनापन आज भी बना हुआ है। जगदलपुर माटी की सौंधी खुशबू हमेशा मुझे खींचती है। स्नेहीजन कार्यक्रमों में आमंत्रित करते हैं। समय अनुकूल रहता है, तो मैं शामिल भी होती हूँ। इसका पूरा श्रेय जाता है परम् श्रध्देय लाला जगदलपुरी जी को।

उनसे हर मुलाक़ात ख़ास हुआ करती थी। सुनने, गुनने और सीखने कुछ न कुछ अवश्य मिला करता था। उनसे मिलकर नई ऊर्जा मिलती थी। भीतर ही भीतर कुछ लिखने करने की प्रेरणा और उत्साह संचरित हो जाता

था। एक लंबे अंतराल के पश्चात जब उनसे मिली तो...,परिदृश्य कुछ ऐसा था कि मैं अवाक रह गई!

बात दिनाँक ०६–०६–२०११ की है। मैं अपने पति प्रदीप जी के साथ उनसे मिलने रायपुर से जगदलपुर गई। बस से उतरकर ऑटो रिक्शा कर सीधे उनके घर पहुँचे। समय रहा होगा दोपहर लगभग बारह बजे का। लाला जी अपने कमरे में आरामकुर्सी में बैठे हुए थे सामने खुला बरामदा था। अतः हम उनके कमरे के दरवाजे तक चले गये। उन्होंने एकदम सपाट शब्दों में कहा, "अभी भोजन का समय है, मैं भोजन करूँगा, और यदि कोई शोध सामग्री चाहिये, तो नहीं दे सकूँगा।" उनसे हम अनेकों बार मिल चुके थे, लेकिन कभी ऐसे शब्द नहीं सुने। उनके शब्द सुनकर हम अवाक रह गये। उन्हें सादर प्रणाम किया, चरण स्पर्श किया और कहा "बहुत दिनों से आपसे मिलने की इच्छा थी, अतः हम आपके दर्शन के लिए आये हैं।" वे सुन सके या नहीं, हमें समझ नहीं आया। हमारी बातें सुनकर उनके अनुज केशव लाल जी बाहर आये, जो हमें पहचानते थे। उन्होंने भी वही बातें दोहराईं। हमने कहा ठीक है, हम भोजन के पश्चात मिलेंगे। उन्होंने कहा आधे–पौन घंटे के बाद मिलिये। हमने कहीं और न जाकर वहीं इंतज़ार करना उचित समझा, और बरामदे में एक तरफ हटकर खड़े हो गये। केशव जी ने कहा, यदि इंतज़ार ही करना है, तो चलिये ऊपर बैठते हैं। वे हमें इसी मकान में, अपने निवास 'आस्थायन' की पहली मंज़िल में बनी बैठक में ले गये। बड़ी –सी सुंदर बैठक जहाँ उनकी अभिरुचि और सम्पन्नता के दर्शन हुये। बड़े से स्क्रीन वाला महँगा टी वी, ए सी, सागौन–शीशम के कलाकारी उकेरे हुये सुंदर महँगे–महँगे फर्नीचर थे। सुख सुविधा शौक़ के समस्त भौतिक संसाधनों के बावजूद यहाँ वो बात नहीं मिली, जो लाला जी के छोटे से कमरे में थी। प्लास्टिक के स्टूल, मच्छरदानी लगा हुआ पलंग, आराम कुर्सी, खूँटी पर टँगे उनके कुछ कपड़े, शैल्फ़ पर करीने से सजी हुई किताबें। ऐसा लगा मानो 'आस्थायन' लक्ष्मी निवास है, और 'कवि–निवास' में स्वयं सरस्वती जी वास करती हैं। दोनों भ्राताओं की बातों में भी स्पष्ट अंतर। केशव जी ने अपने व्यक्तित्व, लेखकीय अस्तित्व का परिचय कराया।

जो हमने पहली बार जाना। स्थापित रचनाकारों और राजनीतिज्ञों से अपने संबंधों की बातें कीं। मुझे अपनी कुछ किताबें भी सादर भेंट कीं, और आवश्यक काम कहकर बैठक से चले गये। शायद उनके आराम का समय रहा हो ! मैं सोचती रही दोनों के बारे में। लक्ष्मी और सरस्वती एक ही छत के नीचे ! साधकों के स्वभाव में मूलभूत अंतर ! लाला जी ने कभी भी स्वयं के बारे में कुछ नहीं बताया। इन सब बातों से निर्लिप्त रहते हुये, उन्होंने सिर्फ़ सच्ची साहित्य साधना की। रचनाधर्मिता निभाई। उनकी सतत साधना का प्रसाद ही उनके परिवार/ परिजनों को मिला। उनके नाम से उनके परिवार को अच्छी ख़ासी पहचान मिली है, ऐसा केवल मैं नहीं अधिकांश मानते हैं। विषयांतर से बचकर पुनः लालाजी से मिलते हैं।

लगभग एक घंटे पश्चात हम लालाजी के कमरे 'कवि–निवास' की ओर गये। बाहर रखी जूठी थाली ने इशारा किया, कि वे भोजन कर चुके हैं। हमने जाकर पुनः चरण स्पर्श किया। केशव जी ने मेरा नाम लिखकर पर्ची उनको दे दी। जिसे देखते रहे, पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की। शायद लिखाई समझ न सके या पढ़कर स्मृतियों में गोते लगा रहे हों, कौन है ये ? मैंने पुनः बड़े बड़े स्पष्ट अक्षरों में अपना नाम लिखकर उन्हें दिया। एकदम भावुक हो गये, और हाथ जोड़कर बोले, "माफ कीजियेगा, मैं पहचान नहीं पाया। बुढ़ापा है, ठीक से दिखाई नहीं देता।" मेरा नाम 'किरण लता' दोहराते हुए फिर कहा, "अक़्सर याद करता हूँ तुमको, पर पहचान नहीं सका, माफ़ करना बेटा, यह मेरा दोष नहीं, नज़रों का दोष है।" अपनी ही बात पर फिर हँसते हुये बोले, मोतियाबिंद भी हो गया है। नज़र कमज़ोर हो चली है, अब इसकी मदद लेता हूँ, कहकर स्टूल पर पड़ा हुआ मैग्नीफाइंग ग्लास उठाकर हमें दिखाया। हम भी मुस्कुरा दिये। क़रीब दो–ढाई घण्टे हमने उनके साथ बिताये। उन्होंने बहुत सी बातें कहीं। हम सुनते रहे। श्रवणशक्ति कमजोर होने के कारण वे ठीक से सुन नहीं पा रहे थे, अतः हमने कुछ बातें लिख–लिख कर भी कीं। उन्होंने फिर एक बार मुझे अपना कविता संग्रह छपवाने को कहा, और स्वयं भूमिका लिखने की मंशा जाहिर की। मैंने शंकित मन से हामी भरी। शंका खुद पर थी, या उन पर,

यह भी एक बहुत बड़ी शंका थी।

बातों बातों में समय ऐसा बीता कि न हमें यह ध्यान रहा कि उनके आराम का वक्त हो गया, न ही उन्होंने आराम की आवश्यकता महसूस की। अपनेपन और प्रसन्न मन की बातों में समय आड़े ही न आया। क़रीब चार बजे हमने जाने की अनुमति ली। एक बार फिर उन्होंने हाथ जोड़कर माफ़ी माँगते हुये, वही शब्द दोहराये। इतनी विनम्रता और सहजता किसी महामानव में ही हो सकती है। हमने उनकी यह विनम्र मुद्रा मोबाइल के कैमरे में क़ैद कर ली। वह तस्वीर आज भी हमारे पास है।

रायपुर लौटकर हम फिर व्यस्त हो गये अपनी रोजमर्रा की गतिविधियों में, पर इस बार लालाजी के शब्दों को प्राथमिकता देकर,उनकी इच्छा पूर्ण करने की दिशा में कविताओं का चयन कर लिया, टंकण भी करवा लिया। फ़ोटोकॉपी प्रिंट इतने बड़े अक्षरों में निकलवाये, कि उन्हें पढ़ने में दिक्क़त न हो। मैग्निफ़ाइंग ग्लास की आवश्यकता भी ना पड़े। पूरी तैयारी के बावजूद जगदलपुर जल्द नहीं जा सके। पत्रों का सिलसिला पहले ही कम हो गया था, जो धीरे–धीरे बंद हो गया। श्रवणशक्ति कमज़ोर होने के कारण हम मोबाइल फ़ोन पर बात नहीं कर सकते थे। एक दिन मोबाइल पर खबर मिली सरस्वती का यह सतत साधक सांसारिकता से मुक्त होकर चल पड़ा है अनंत यात्रा की ओर। मेरी आँखों में आँसू थे और मन में ग्लानि, कि मैं उनकी यह इच्छा पूरी नहीं कर पाई, 'उन्हें मेरे काव्य संग्रह की भूमिका लिखनी थी।'

इसी अपराध बोध को मन में लिये, मैंने अपनी क़िताब छपवाने की प्रक्रिया तीव्र कर दी। अपना पहला कविता संग्रह 'मन–मंजरी' उन्हें समर्पित करते हुये, उनके पत्रों को आशीर्वाद स्वरूप पुस्तक के अग्रपृष्ठों में स्थान दिया। सन 2013 में उनका जन्मोत्सव मनाते हुये, अपने प्रथम कविता–संग्रह का लोकार्पण भी किया। इस कार्यक्रम के दौरान खेद और आश्चर्य की यह बात जानकारी में आई, कि बस्तर इतिहास और संस्कृति के मर्मज्ञ, आजीवन सरस्वती की साधनारत इस बस्तर विभूति को रायपुर शहर के बहुत से साहित्यकार भी नहीं जानते, जबकि उनका काम कई नामचीन साहित्यकारों

से अहम और उत्कृष्ट हैं। तब से प्रतिवर्ष मैं उनकी जयंती पर उनपर केंद्रित एक कार्यक्रम अपने निवास पर करती हूँ। यह मेरा उनके प्रति लगाव है, सम्मान और श्रद्धा या उनकी इच्छा पूरी न करने का प्रायश्चित मैं खुद नहीं जानती।

किरण वैद्य 'कठिन'
रायपुर
मो.–9826516430

लाला जी बसे हृदय में **पृ. क्र.–063**

हम तुम्हें भुला न पाएँगें

मेरा परम सौभाग्य है कि, बचपन उन्हीं की स्नेहासिक्त छाया में पल्लवित हुआ। संयुक्त परिवार के मुखिया के रुप में बाबा (कीर्तिशेष लाला जगदलपुरी जी – वे हमारे ताऊ जी थे पर हम भाई–बहन प्यार से उन्हें बाबा संबोधित किया करते थे) का स्नेह, आशीर्वाद हम सभी को सहज ही प्राप्त था। पढ़ाई के लिए अधिकांश समय जगदलपुर में उनके और दादी माँ के साथ रहने के कारण उनसे मेरा विशेष लगाव, आजीवन बना रहा। इस सुदीर्घ अवधि में उनके साथ बिताए दिनों की स्मृतियाँ मानस पटल पर सजीव हो उठी हैं। सभी संस्मरणों को लिपिबद्ध कर पाना दुश्कर होने के कारण श्रद्धांजलि स्वरुप कुछ अविस्मरणीय पलों की यादें साझा कर पा रहा हूँ। "हृदय में बसे लालाजी'' के प्रकाशन की योजना बना कर अवसर देने के लिए आदरणीय श्री सनत जैन जी कर साधुवाद, आभार। अन्यथा शायद अपनी व्यस्तता की आड़ में इसे कभी भी लिपिबद्ध नहीं कर पाता।

8–9 वर्ष की उम्र। ढाई–तीन फुट की एक पतली लकड़ी लेकर मैं, बुड्ढों की नकल करता घूम रहा था। खेल–खेल में कब मैंने उस लकड़ी का ऊपरी सिरा अपनें मुँह में ले लिया था, इसका आभास ही नहीं हुआ। फिर अचानक गिर पड़ने से वह लकड़ी तालू के उपरी नरम भाग को छेद करते हुए मुझे गंभीर रुप से चोटिल कर गई। सूचना मिलते ही बाबा बदहवास से घबड़ाए, दौड़े आए। तब बहुत अच्छी चिकित्सा सुविधा भी उपलब्ध नहीं थी कि, ऐसी आपात स्थिति से निबटा जा सके। गिने–चुने डाक्टर शहर में थे। संभवतः तब उन्होंने मुझे अपने मित्र डॉ. चक्रवर्ती के पास ले जाकर दिखवाया था। उस समय बाबा का मेरे प्रति चिंतित होना नहीं भूलता। मुझे ठीक होने में कई दिन लग गये थे। सूचना पाकर गाँव (केशरपाल – जहाँ पिता जी स्व. केशव लाल श्रीवास्तव, आदिम जाति कल्याण विभाग में प्रधान अध्यापक के रुप में शासकीय सेवा में थे) से माँ–पापा भी आ गये थे। उन दिनों जिद करने पर मुझे, मेरी पसंद की जलेबी–लडडू आदि मिठाई बाबा ला देते थे जिसे खा तो नहीं पाता था पर हाथ में लेकर देखता रहता था। कई दिनों

तक खाने के लिए तो दलिया आदि तरल आहार के भरोसे ही रहना होता था। यह सब सहृदय बाबा के लिए काफी कष्टप्रद रहा।

हमारी बचपन की बदमाशियों और बेवकूफियों को बाबा ने हमेशा सहज रहते हुए झेला। शायद कभी खीझते और कभी आनंदित भी होते रहे होंगे। गुस्से की चरमावस्था में भी उनके मुँह से ''नालायक'' से अधिक कभी सुना नहीं। याद आ रहा है ... एक बार पड़ोस में रामगोपाल भैया के घर शर्त लगाकर कंचे (कांच की छोटी गोली/बाटी) से उनके बैठक का टयूबलाइट एक ही बार में फोड़ कर भाग आए थे। फिर चाची जी (राम गोपाल भैया की माँ) का गुस्सा, रोना धोना और बाबा के पास शिकायत ले कर आना। हमें मामूली डाँट तो पड़ी। पर गरीबी के उन दिनों में भी बाबा निःसंकोच तुरंत नया टयूबलाइट लाकर उन्हें दिये थे, तब जाकर वे शांत हुई थीं। ऐसे थे हमारे बाबा!

कभी भरी दोपहरी में इंद्रावती नदी के किनारे डोकरीघाट (जहाँ माँ डोकरी देवी की प्रतिमा आज भी स्थापित है) से लगे नाले और खाई के दूसरी तरफ पहाड़ी पर अंग्रेजी इमली तोड़ने जाना और इस तरफ से सुंटिया लेकर हमें खोजते हुए बाबा का आना। उनका गुस्सा करना, चिल्लाना और उनसे छिपते–छिपाते हमारा घर वापस आना..... पर कभी मार नहीं खाना बहुत याद आता है।

वैसे तो मैं पढ़ाई में हमेशा ठीक–ठाक ही रहा। प्रायमरी कक्षा में बाबा प्रायः समय–समय पर मुझे पढ़ाते भी थे। उनके सान्निध्य का ही परिणाम रहा कि धीरे–धीरे लिखने (साहित्य) में भी मेरी रुचि बनने लगी थी। जब कभी कुछ लिख पाता, उन्हें जरुर दिखाता। उनकी शाबासी और प्रोत्साहन से मेरा मनोबल बढ़ता था। त्रुटियों को भी वे पूरी सजगता से समझाकर सुधरवा देते थे। पर साथ ही उनकी हिदायत होती थी कि, पढ़ाई में विशेष ध्यान दो। इसलिए प्रकाशन की ओर कभी ध्यान गया ही नहीं। घर में पापा, छोटी बहन डाँ आभा और फुफेरी बहन डाँ. शोभा की साहित्यिक अभिरुचि भी उन्हीं की विरासत है।

जगदलपुर के डोकरीघाट पारा में पहले किराये के मकान में और संभवतः 1966–67 के आस–पास उनके दो छोटे भाइयों के सहयोग से

निर्मित खप्पर वाले मिट्टी के मकान (जिसका स्वरुप अब बदल चुका है) में हमारा संयुक्त परिवार लगभग 30 वर्षों से अधिक समय तक निवासरत रहा। यह छोटी सी कुटिया उनकी कीर्ति के कारण कवि–निवास के रुप में जगदलपुर शहर में मशहूर थी। सीलन भरे इस मिटटी के मकान में उन्होंने अपना कठिन समय आंनदपूर्वक बिताया। हमारे दादाजी के निधन के बाद इस परिवार के विकट संघर्षों की कहानी, होश संभालने के बाद दादी की जुबानी कई बार सुनी है। जिसका जिक्र यहाँ प्रासंगिक प्रतीत नहीं होता। संभवतः उन्होंने अभावों में आनंदपूर्वक जीना पहले ही सीख लिया था। वर्षों तक केवल मृगछाल का बिछौना, डिक्शनरी का सिरहाना, माँ (दादी) का लामनी गांव (7–8 किमी. दूर) से जलाऊ लकड़ियों का गट्ठर सिर पर उठा कर लाना, पहनने के लिए मात्र एक–दो वस्त्रों की उपलब्धता इत्यादि उनके तत्कालीन अभावों और संघर्षों का अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त है, जो वर्तमान परिवेश में अविश्सनीय सा लगता है।

ऐसी विकट परिस्थितियों और साहित्यिक माहौल के अभाव में भी उनका रचनाकार पूरी लगन और निष्ठा से निरंतर गतिमान रहा। साधनविहीन, साहित्य साधक होते हुए भी उनका स्वाभिमानी, सरल और संतोषी बना रह पाना आश्चर्यजनक होने के साथ–साथ प्रेरणादायक भी है। मैंने देखा प्रकाशन के प्रति वे कभी लालायित नहीं रहे। संभवतः इसी कारण विरासत में प्राप्त उनकी कई अप्रकाशित पांडुलिपियाँ आज भी प्रकाशन की बाट जोह रही हैं। बस्तर माटी की गूंज के रुप में मेरे और छोटी बहन डॉ. आभा के प्रयासों से उनकी कुछ अप्रकाशित रचनाओं का संकलन वर्ष 2020 में प्रकाशित हो सका, जिसका विमोचन माननीय मुख्यमंत्री श्री भूपेष बघेल जी के द्वारा बाबा के 100 वें जन्मदिवस के अवसर पर जगदलपुर में आयोजित समारोह में किया गया था।

बहरहाल मेरे होश संभालने के दौरान धीरे–धीरे स्थितियाँ संभलने लगी थी। आकाशवाणी से कविताओं, आलेखों और ध्वनि–रुपकों के प्रसारण, पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली रचनाओं के प्रकाशन एवं प्रकाशित चंद पुस्तकों की रायल्टी से किसी तरह उनका खर्चा चल जाता था। मंझले भाई केशव (पिता जी) और छोटे भाई सुदर्शन (चाचा जी) के नौकरी में आने

के बाद वे भी घरेलू जिम्मेदारियों के निर्वहन में सहभागी हो गये थे। तत्कालीन माननीय मुख्यमंत्री श्री अर्जुन सिंह जी से हमारे निवास स्थान पर बाबा की सौजन्य भेंट के पश्चात उन्हें राज्य शासन से मानदेय स्वरुप वित्तीय सहायता भी मिलने लगी थी। कुछ अंतराल के पश्चात पुनः तत्कालीन माननीय मुख्यमंत्री श्री रमन सिंह जी भी हमारे निवास पर बाबा से मुलाकात के लिए आए थे। इसके पश्चात उन्हें राज्य शासन से प्राप्त होने वाली मानदेय की सहायता राशि में आंशिक वृद्धि भी हुई। ये मुलाकातें औपचारिक होनें के बावजूद अत्यंत आत्मीय रहीं। उपरोक्त स्त्रोतों से प्राप्त होने वाली राशि, सुविधायुक्त जीवन जीने के लिए पर्याप्त नहीं होने के बावजूद उनकी सीमित आवश्यकताओं के कारण खर्चा चलाने के लिए पर्याप्त थी।

फिर भी उक्त स्त्रोतों से प्राप्त होने वाली उस अल्प–राशि की परवाह उन्होंने कभी नहीं की। सहज ही वह घटना भी याद आती है जब उन्होंने शासकीय वित्तीय सहायता के वार्षिक नवीनीकरण हेतु शासन के नियमानुसार आवश्यक जीवन प्रमाण–पत्र प्रस्तुत करने के लिए कड़ाई से मना कर दिया था। इस संबंध में उन्होंने संबंधित विभागीय अधिकारियों को लिख दिया था कि, उन्होंने सहायता अथवा मानदेय की मांग नहीं की थी इसलिए प्रत्येक वर्ष स्वयं का जीवन–प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की औपचारिकता सम्मानजनक नहीं हैं। ऐसी सहायता की उन्हें आवश्यकता नहीं हैं। और विशेष प्रकरण मानकर शासन द्वारा उनकी यह जिद भी मान ली गई थी।

हालात सुधरने के बाद उनके पास कुछ पैसे बचने भी लगे थे। जिससे वे अपने छोटे–मोटे शौक पूरे कर लिया करते थे। घर खर्चे में भी उनकी यथायोग्य सहभागिता होती थी। मुझे अच्छी तरह याद है, वर्ष 1980 से 1983 के बीच अभियांत्रिकी डिप्लोमा पाठयक्रम हेतु मेरे धमतरी में अध्ययनरत रहने के दौरान परिवार द्वारा प्रतिमाह मुझे भेजी जाने वाली 100 से 125 रुपयों की राशि में 20–25 रुपयों का उनका भी अनमोल सहयोग हुआ करता था। वह दिन भी याद आता है, नवंबर–दिसंबर 1989 में बहन विभा (पति – श्री राजेश वर्मा) और फिर मेरे विवाह के पश्चात कल्पना (पत्नी) की मुँह दिखाई का अवसर बाबा के वे शब्द नहीं भूलते 'मुँह दिखाई में कुछ देना तो पड़ता है

ना! लेकिन मेरे पास तो कुछ है नहीं' फिर जेब में हाथ डालते हुए 'यह मेरी महीने भर की कमाई है, इसे तुम रख लो।' ऐसा कहकर उन्होंने 175 रूपयों का एक बंडल (जिसमें 1, 2 और 5 के नोट रहे होंगे।) कल्पना के हाथ में सस्नेह रख दिया था। बहुत मना करने पर भी वे माने नहीं। काफी लंबे समय तक प्रसाद–स्वरूप वह राशि कल्पना के पास सुरक्षित रही। नोटों की स्थिति खराब हो जाने के पश्चात उस राशि से, स्मृति–स्वरूप एक बर्तन खरीद कर रख लिया गया।

बाजार से कुछ सामान खरीद कर लाने पर वे मुझे जरुर दिखाते थे। एक बार की बात है, वे किसी परिचित दुकानदार से प्लास्टिक का एक मंहगा टार्च खरीद लाए। दुकानदार ने उन्हें बताया था कि, वह टार्च "अनब्रेकेबल" है। घर आने पर उन्होंने टार्च की तारीफ करते हुए बताया कि, देखो यह बहुत अच्छा और ''अनब्रेकेबल" टार्च है। हम लोग भी तब उन्हें छेड़ने के मूड में थे। मैंने कहा बाबा, टार्च तो अच्छा ही है लेकिन यह "अनब्रेकेबल" नहीं हो सकता। वे खीझ उठे, कहा– दुकानदार ने बताया है। और कहा– मैं पटक कर दिखाता हूँ। उन्होंने टार्च को पटक दिया। टार्च नहीं टूटा। बाबा प्रसन्न होकर कहने लगे देखो "अनब्रेकेबल" है, कि नहीं? हम भी उन्हें परेशान करने के पूरे मूड में ही थे। हमने (बच्चों ने) कहा कि, एकाध–बार कम ऊंचाई से, धीरे से गिरने से नहीं टूटा तो टार्च "अनब्रेकेबल" थोड़ी हो गया। ऊपर से या जोर से गिरेगा तो टूट ही जावेगा। बाबा भी अपनी बात सिद्ध करने पर अड़े थे। इस बार उन्होंने टार्च को जमीन पर जोर से दे–मारा। बेचारा प्लास्टिक का टार्च, उसका काम तमाम हो गया था। अब बाबा का गुस्सा देखते ही बनता था। हम बच्चे तो भाग ही गये थे। बाबा टूटा–फूटा टार्च लेकर उस परिचित दुकानदार के पास गये। उसे सारी बात स्पष्ट बताया और यह भी बताया कि, आपके कहे अनुसार टार्च ''अनब्रेकेबल'' नहीं था। वह दुकानदार भी लाला जी के सरल स्वभाव से अवगत था। उसने बिना कोई अतिरिक्त मूल्य लिए, उस टूटे–फूटे टार्च के स्थान पर सहज ही एक नया टार्च दे दिया था। जिसे लेकर बाबा खुशी–खुशी घर आए थे। ऐसे बेहद सरल थे, बाबा।

बात संभवतः 1974–1975 की है। तब पापा की पदस्थापना माध्यमिक

शाला केशरपाल (राष्ट्रीय राजमार्ग–30 पर ग्राम भानपुरी से 9–10 कि. मी. दूर) में प्रधान अध्यापक के रुप में थी। मैंने कक्षा छठवीं–सातवीं की परीक्षा पापा के साथ गांव में रहकर इसी स्कूल से पास की थी। तब बाबा प्रायः कुछ दिनों का समय निकाल कर गांव आ जाया करते थे । वहाँ गांव का माहौल, घूमना–फिरना और साहित्य सृजन के लिए एकांत काफी आकर्षित करता था। भानपुरी से हम लोग प्रायः बैलगाड़ी से अथवा पैदल जाते थे। पर बाबा प्रायः पैदल जाना ही पसन्द करते थे। इस तरह घूमते–फिरते, एकांत में चिंतन और सृजन के लिए पर्याप्त समय जो मिल जाता था। गांव में शाम को घूमने–फिरने के बाद कभी–कभार सलफी का सेवन, जाड़े की रात में अंगीठी जलाकर आग–तापना, सभी से आत्मीय चर्चा के बाद भोजन और फिर रांधा खोली (किचन) से लगे हुए एक पृथक कमरे में विश्राम। दोपहर के विश्राम के बाद उनका यही रुटीन था।

इसी क्रम में किसी दिन पास के गांव ''नहरनी'' में शाम को दोनों भाईयों का घूमने जाना हुआ। उन दिनों गांव में किसी साधु के द्वारा एक क्षेत्र विशेष की खुदाई की जा रही थी। खुदाई में प्राचीन काल के किसी मंदिर का काफी हिस्सा तब दिखने लगा था। साथ ही कुछ प्राचीन मूर्तियाँ और शिलालेख भी प्राप्त हुऐ थे। यही आकर्षण था उनके भ्रमण का। और साथ ही पापा के एक पारिवारिक मित्र श्री कन्हैया लाल बाजपेयी जी से भी मिलना हो गया था। जिन्होंने यथा–शक्ति अतिथि सत्कार की परम्परा का निर्वाह किया था। शाम को घर वापस लौटने के पश्चात हाथ–पैर धोकर भोजन ग्रहण किया गया। भोजन के पश्चात उस दिन वे रात्रि विश्राम के लिए अपने कमरे में जल्दी चले गये थे। माँ के बताए अनुसार कुछ देर के पश्चात उन्होंने बाबा के कमरे से कराहने की आवाज सुनी। काफी देर तक उनका कराहना और कुछ विचित्र आवाजें जब कम नहीं हुई तो घबराकर उन्होंने पिताजी को उठाया। पापा ने भी जब यह सब सुना तो हिम्मत करके बाबा के कमरे की तरफ गये। और देखा, तब बाबा का स्वर अत्यधिक रुंधा हुआ था। उन्हें झकझोर कर उठाया गया। वे पसीने से तरबतर हो गये थे। कुछ देर बाद सामान्य होने पर उन्होंने बताया कि, सामने की खिड़की से छोटी–छोटी तीन आकृतियाँ प्रकट हो कर उनकी छाती पर बैठ गये थे और गला दबा रहे थे। पापा के

झकझोरने के बाद वे भाग गये थे अथवा विलुप्त हो गये थे। उस रात घर में कोई नहीं सो सका। सभी बहुत घबड़ा गये थे। अगले दिन बुजुर्ग ग्रामीणों से चर्चा में पुष्टि हुई कि, यह कोई भ्रम अथवा स्वप्न नहीं था। गांव में इस तरह की कई घटनाएँ तब अक्सर सुनने में आती थी जिसका कोई तार्किक विश्लेषण संभव नहीं है।

नगर के पैदल भ्रमण में उन्हें बहुत आनंद आता था। दोपहर के विश्राम के बाद वे प्रायः 4–5 बजे पैदल ही निकल जाते थे। विचारों में मग्न, एक हाथ में छाता और धोती का एक सिरा दूसरे हाथ में लिए उन्हें नगर की विभिन्न गलियों–सड़कों में देखा जा सकता था। घूमने के साथ रास्ते में मिलने–जुलने वालों से आत्मीय और साहित्यिक चर्चा हुआ करती थी। कुछ साहित्य प्रेमी उनका सान्निध्य पाने और गूढ़ चर्चा के लिए साथ–साथ घूमना भी बहुत पसंद किया करते थे। इसका उल्लेख श्री त्रिलोक महावर जी ने अपने संस्मरणों में भी किया है।

घूमते–घामते चटपटा खाना उन्हें अच्छा लगता था। घूमने–फिरने के दौरान सड़क पार करते समय वे बहुत सतर्कता बरतते और मुझे भी सिखाते थे। कभी–कभी उनके साथ पैदल जा कर पास के प्यारेलाल होटल से समोसे, आलूगुंडा, जलेबी इत्यादि खरीद लाता था। वे घर में भी, चटपटी नमकीन, गाठिया और पसंदीदा अन्य सामग्री ले आते थे। दांत नहीं होने पर भी वे अपने कमरे में रखे एक छोटे खलबत्ते में कूट–कूट कर खाने के शौकीन थे। उनके कमरे में जाने पर हम बच्चों को भी वे प्रसाद–स्वरुप कुछ न कुछ खाने को अवश्य दिया करते थे।

ठंड के मौसम में रात्रिकालीन भोजन के पहले आग–तापते हुए भी प्रायः दादी और तीनों भाई बैठ जाया करते थे। तब उनकी अनौपचारिक चर्चाओं में हम बच्चों को भी आनंद आता था और बहुत सी जानकारी भी मिल जाती थी। अपने फुर्सत के क्षणों में वे अपने संयुक्त परिवार के वरिष्ठ सदस्यों की बेरुखी की कहानियाँ भी सुनाया करते थे। आराम कुर्सी पर लेट कर हम बच्चों से पैर के तलवों को कंधी से सहलवाने–खुजलाने में उन्हें आनंद आता था। इसके लिए भी हम बच्चों को प्यार से कभी कुछ खाने को या बतौर पारिश्रमिक 10 पैसा मिल जाया करता था। हम बच्चों को भी बहुत आनंद आता था।

इत्र के भी वे बड़े शौकीन थे। हालात सुधरने के बाद वे कई तरह के इत्र ले आया करते थे। धुलने के बाद भी उनके कपड़ों से इत्र की महक आती थी। इसी तरह पेन के भी वे बड़े शौकीन थे। उनके खजाने में तरह–तरह की और अच्छी कंपनियों की कुछ महँगी पेन भी उपलब्ध थी। जिसमे से कभी–कभी भेंट स्वरुप मुझे भी एकाध पेन मिल जाती थी। स्याही वाली फाऊंटेन पेन से ही लिखना उन्हें ज्यादा पसंद था। परंतु बाद में बाल–पेनों के चलन के दौरान उन्होंने इसका भी बहुत उपयोग किया। उनकी हस्तलिपि में भी एक तरह की विशिष्टता जरुर थी। बहुत से लोग जिसके कायल थे।

विभिन्न साहित्यकारों, साहित्य प्रेमियों एवं शोधार्थियों का घर में आना–जाना लगा रहता था। आदरणीय श्री रउफ परवेज जी, श्री हुकुम दास अचिन्त्य जी, श्री त्रिलोक महावर जी, श्री बंशीलाल विश्वकर्मा जी, श्री सुंदरलाल त्रिपाठी जी, श्री गंगाधर सामन्त जी, श्री गनी आमीपुरी जी इत्यादि से मिलना–जुलना, कविता–पाठ और साहित्यिक चर्चा प्रायः होती ही रहती थी। घर में उनकी चर्चा के दौरान हमारे शोरगुल से होने वाले विघ्न के कारण कई बार डांट भी पड़ती थी। तब मैं छोटा था इस कारण बहुत से साहित्यकारों और मिलने–जुलने वालों का नाम मुझे याद नहीं रहा। हाँ, परन्तु अचिन्त्य जी के आने पर कविता–पाठ के साथ–साथ ठहाके भी बहुत लगते थे। आस–पास के और दूरस्थ क्षेत्रों के साहित्यकारों एवं कवियों से भी बाबा पत्र व्यवहार के माध्यम से गहरे से जुड़े रहते थे। इनमें से श्री लक्ष्मी नारायण पयोधि, श्री नारायण लाल परमार, श्री त्रिजुगी कौशिक, श्री त्रिभुवन पांडेय, श्री हरिहर वैष्णव, श्री गुलशेर खान ''शानी,'' डॉ. धनंजय वर्मा इत्यादि कुछ नाम ही मुझे याद रह पाया है।

पत्रों का समय पर जवाब भेजना उनकी विशिष्टता और दिनचर्चा का हिस्सा था। दूरस्थ कई साहित्य प्रेमियों और संस्थाओं के पत्र नियमित रुप से आते थे। उस दौरान संपर्क में बने रहने का, मात्र यही एक साधन था। पोस्ट कार्ड और अन्तर्देशीय पत्र ज्यादा प्रचलित थे। उनका नियमित डाक–व्यय भी, आमद का एक उल्लेखनीय हिस्सा हुआ करता था। जिससे उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। सभी पत्रों को सजगता से पढ़ कर उत्तर

भेजना, युवा और कनिष्ठ साहित्यकारों को उनकी अपेक्षा के अनुसार मार्गदर्शन देना और आवश्यक सामग्रियाँ सहजता से उपलब्ध करा देना उनके व्यक्तित्व का प्रमुख गुण था।

सरल स्वभाव के कारण कभी–कभी वे छले भी जाते थे। अनायास ही लोगों पर विश्वास कर लेने के कारण कई बार उन्हें नुकसान भी उठाना पड़ा। कई बार दी गई सामग्री/पुस्तकें समय पर वापस नहीं मिलने पर वे दुःखी भी बहुत होते थे। परन्तु फिर भी जरुरी हिदायतों के साथ वे हमेशा मदद कर ही देते ही थे। उनकी कई सामग्रियों (पांडुलिपियों) के दुरुपयोग और चोरी की कुछ घटनाओं का जिक्र स्व. हरिहर वैष्णव जी की पुस्तक "साहित्य ऋषि लाला जगदलपुरी : लाला जगदलपुरी समग्र" में प्रकाशित उन्हीं के संस्मरण में आया है।

साहित्य सृजन के प्रति वे सदैव सजग एवं जिम्मेदार रहे। वे हमेशा "क्वांटिटी" के नहीं "क्वालिटी" के ही हिमायती बने रहे। जो कुछ लिखा प्रमाणिक और उत्कृष्ट लिखा। मैंने देखा था कि, संतुष्ट न होने पर वे पांडुलिपि को बेदर्दी से फाड़ कर फेंक दिया करते थे। जबकि सामान्य रचनाकार अच्छा–बुरा जो कुछ भी लिख पाता है, उसके प्रकाशन के लिए लालायित रहता है। इस प्रवृत्ति को वे "छपास" कहा करते थे। किसी भी सृजन के लिए सर्जक को जो पीड़ा झेलनी होती है उसकी कोई उपमा नहीं है। अपने कृतित्व को स्वयं ही, यूँ नष्ट कर पाने कर मनोबल, उनका सामान्य गुण नहीं था।

ठंड के मौसम में प्रायः वे घर के बाहर धूप में कुर्सी लगा कर बैठ जाया करते थे। धूप के सेवन के साथ–साथ लेखन क्रिया भी चलती रहती थी। एक बार अपनी कुछ पांडुलिपियों को वे बाहर कुर्सी पर ही छोड़ कर कुछ देर के लिए किसी कार्यवश अंदर चले गये थे। ऐसे में किसी गाय के द्वारा उसका अधिकांश भाग चट कर लिए जाने पर उनकी तकलीफ को भी मैंने देखा है। उनकी उस व्यथा का शब्दों में बयान कर पाना कठिन है।

रात को सोते समय सिरहाने में वे एक कलम, डायरी एवं टार्च हमेशा रखते थे। विचार आने पर उसे तत्काल लिपिबद्ध कर लेना उनकी आदत में शामिल था। ''मेरी रचना प्रक्रिया'' के तहत उन्होंने लिखा भी है :– "मेरे

साथ अक्सर ऐसा होता है कि, दिन भर तो बच्चे शोरगुल करते रहते हैं और बिस्तर पर जाते ही देर रात तक शब्द चिल्लाते रहते हैं। और वे तब तक चिल्लाते रहते हैं जब तक कि उन्हें गीत, ग़ज़ल, मुक्तक अथवा दोहों की पंक्तियों में आराम से न बिठा दूँ।''

वे अनुशासित, मर्यादित, सार्थक और बोधगम्य लेखन के पक्षधर थे। मूलतः कवि होने के साथ–साथ उन्होंने गीत, ग़ज़ल, मुक्तक, क्षणिकाएँ, रुपक, गद्य, आलेख, लोक–कथाएँ, अनुवाद, इत्यादि अन्यान्य विधाओं में भी पर्याप्त लेखन कार्य किया। बस्तर : संस्कृति एवं इतिहास, बस्तर की लोकोक्तियाँ, बस्तर–लोक : कला संस्कृति प्रसंग इत्यादि पुस्तकें उनकी कलम से उद्‌भूत शोधपरक एवं प्रमाणिक साहित्य हैं। हिंदी के अलावा हल्बी, भतरी और छत्तीसगढ़ी इत्यादि भाषाओं / बोलियों में उनकी अच्छी पकड़ थी। अतः इन भाषाओं में भी उनकी पर्याप्त एवं उत्कृष्ट रचनाएँ उपलब्ध हैं। बस्तर क्षेत्र की संस्कृति, इतिहास, लोक–कला, लोक–गीत, लोक–जीवन और प्राकृतिक सौंदर्य पर विशेष रुप से केंद्रित लेखन के साथ–साथ अन्य समसामयिक विषयों पर भी पर्याप्त लेखन कार्य करते हुए उन्होंने लेखकीय दायित्वों का समुचित निर्वहन किया।

कवि–सम्मेलनों और गोष्ठियों में जाना / भाग लेना उन्हें बेहद भाता था। कई बार मानदेय का प्रावधान नहीं होने पर भी "गांठ" के पैसे खर्च करके शहर के बाहर चले जाया करते थे। कभी–कभार मार्ग–व्यय मिल जाया करता था। परंतु स्वाभिमानी होने के कारण शासकीय आयोजनों में भाग लेने से वे बचते थे। कभी निर्देशात्मक भाव से निमंत्रण मिलने पर, ऐसे आयोजनों में वे कभी नहीं गये। भले ही किसी रसूखदार अधिकारी का निमंत्रण क्यों न रहा हो। बाद में उनके व्यक्तित्व के इस गुण को समझकर लोग सतर्कता बरतते थे साथ ही उनका आदर भी करने लगे थे। वे बताते थे, उन दिनों मंच पर प्रायः सशक्त और शालीन रचनाएँ ही स्थान पाती थीं। एक स्वस्थ परंम्परा थी। तब मंच पर पेंगे नहीं चलती थीं। कविताओं के बीच लतीफों और चुटकुलों की घुस–पैठ नहीं हो पाती थी। हूटिंग का चलन नहीं था। आज की तरह मंच बदचलन नहीं था। तत्कालीन कवि सम्मेलनों के कई किस्से वे अक्सर सुनाते थे जिसमें से कुछ संस्मरणों को महानुभाव साहित्यकारों

ने और स्वयं उन्होंने भी लिपिबद्ध किया है।

सृजन–धर्मिता के उनके साधक–जीवन की बहुत सी अविस्मरणीय उपलब्धियाँ रहीं। स्थानीय, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर के विभिन्न सम्मान उन्हें प्राप्त हुए लेकिन इसके प्रति जीवन में कभी उनकी उत्सुकता नहीं दिखी। श्री हरिहर वैष्णव जी अपनी पुस्तक "साहित्य ऋषि लाला जगदलपुरी : लाला जगदलपुरी समग्र" में लिखते हैं :– ''लाला जी ने उन्हें उन पर पी. एच.डी. करने से भी मना कर दिया था। साथ ही वे यह भी बताते हैं कि, उनसे छिपते–छिपाते उन्हें पद्मश्री से अलंकृत किये जाने एवं डी. लिट् की मानद उपाधि से सम्मानित किये जाने के संबंध में भी उनके एवं अन्य सुध ी साहित्यकारों द्वारा प्रयास किया गया था, क्योंकि उन्हें भनक भी लग जाती तो उनका स्वाभिमान आड़े आ जाता और वे कोहराम मचा देते। बस्तर के दुर्भाग्य से इस संबंध में उन सभी के अथक प्रयास सफल नहीं हुए।"

साहित्य सृजन के साथ–साथ पढ़ने हेतु भी वे पर्याप्त समय देते थे। उनके कमरे की व्यक्तिगत लाइब्रेरी में विभिन्न लेखकों की पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं के अलावा कई दुर्लभ एवं प्राचीन साहित्य भी उपलब्ध था। परंतु स्थानाभाव और सीलन के कारण कई पुस्तकें खराब हो जाती थीं। 35–40 वर्ष पूर्व एक बार दीमक के प्रकोप के कारण जब पुस्तकें खराब होने लगी थीं तब उन्होंने अपनी अधिकांश पुस्तकें स्थानीय राजा रुद्रप्रताप देव लायब्रेरी को दान कर दिया था। बहुत सी पुस्तकें रद्दी में भी बेचनी पड़ी थी। इसके पश्चात भी अंत समय तक उनकी व्यक्तिगत लायब्रेरी पुनः बहुमूल्य और दुर्लभ पुस्तकों से समृद्ध हो चुकी थी। उनके देवलोक गमन के पश्चात लगभग 1500 से अधिक पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएँ, उनके विभिन्न सम्मान–पत्र और स्मृति–चिन्ह इत्यादि हमारे परिवार के द्वारा स्थानीय "लाला जगदलपुरी केंदीय जिला ग्रंथालय" को दिसंबर 2020 में उपलब्ध करा दी गई ताकि वे पुस्तकें और अन्य सामग्रियाँ सभी के लिए सहज ही उपलब्ध रहें और इनका सदुपयोग सुनिश्चित हो सके।

उनके जन्म–दिवस के दिन हम सपरिवार इकट्ठे हो कर उनका तिलक–आरती करते हुए उनके स्वस्थ और दीर्घायु जीवन की कामना करते और आशीर्वाद लेते थे। उस दिन घर में आने–जाने वालों का तांता लगा

रहता था। बहुत से लोग और सुधी साहित्यकार शाल–श्रीफल और मिठाइयाँ इत्यादि लेकर आते, उनका सम्मान करते और आशीर्वाद लेकर चले जाते थे। उस दिन हम बच्चों को भी बहुत मिठाइयाँ खाने को मिलती। कुछ शाल वे माँ को और बहुओं को भी दे दिया करते थे। मुझे याद है उनके 72वें जन्म–दिन पर मैंने उनका एक चित्र बना कर भेंट किया था। जिसे उन्होंने बहुत पसंद किया था। वह चित्र कई वर्षों तक उनके कमरे की और फिर सम्मिलित बैठक की शोभा बढ़ाता रहा। मेरी पुस्तक "बस्तर माटी की गूंज" में भी वह चित्र संकलित है। चित्रकारी मुझे पिताजी से विरासत में मिली है। वे भी बहुत अच्छे चित्रकार, कहानीकार, इतिहासकार और कवि थे। बाबा का जन्म–दिन हमारे परिवार में त्यौहार से कम नहीं होता था। आज सार्वजनिक रुप से आयोजित होने वाले विभिन्न जन्म–दिन समारोहों में उन्हें ससम्मान याद किया जाता है। इसमें से कुछ स्थानीय कार्यक्रमों में उपस्थित रहकर सचमुच गौरवान्वित अनुभव करता हूँ।

स्न 1983 से 1984 के बीच नरहरपुर में और स्न 1988 से 1992 के बीच फरसगांव में मेरी पदस्थापना के दौरान भी वे कभी–कभी कुछ दिनों का समय निकालकर मेरे पास आ जाया करते थे। वहाँ भी गांव का माहौल और जंगल उन्हें बहुत रास आता था। फरसगाँव में सितम्बर 1990 में मेरी बड़ी बेटी आस्था के जन्म लेने के पश्चात जरुरी सामान लेकर माँ ने उन्हें अगले दिन भेजा था। वे अत्यंत प्रसन्न थे। पूरे परिवार को आस्था के रुप में ''जीवंत खिलौना'' जो मिल गया था। उसका ध्यान रखने के लिए उनकी बड़ी हिदायतें होती थीं। उस बच्ची के आगमन से नई पीढ़ी के शुरुआत के वे दिन पंख लगाकर निकल गये थे। उसके थोड़ी बड़ी होने पर बाबा ऊंगली पकड़ कर उसे घुमाया करते थे और जब कभी खाने–पीने की चीजें, खिलौने आदि दिलवा दिया करते थे। तब बाबा के दांत नहीं होने के कारण खाने की विभिन्न वस्तुओं को खलबत्ते में कूट–कूट कर खाते देखकर आस्था ने उनका नाम ''कूट्टू–दादा'' रख दिया था। इसी क्रम में पिताजी के ज्यादा पान खाने को लेकर उन्हें, ''पान–दादा'' और चाचा जी के रोज मंदिर जाने के कारण उन्हें, ''मंदिर–दादा'' कहा जाने लगा था। क्रमशः छोटे भाई विकास (पत्नी – सौ. सुप्रिया), बहन आभा (पति – श्री वीरेन्द्र) और फिर

सबसे छोटे भाई अभय (पत्नी – सौ. भावेश) का विवाह वर्ष 1995 से 1998 के बीच सम्पन्न हुआ। जिसमें परिवार के मुखिया की हैसियत से बाबा की महत्वपूर्ण भूमिका रही। परिवार में आदर्श, आशुतोष, आशीष और आदित्य के रुप में नये सदस्य जुड़ते चले गये। बहनों के भी दो–दो बच्चे क्रमशः वैभव, गौरव, निष्ठा और निशांत के जन्म लेने और सबसे आखिर में मेरी छोटी बिटिया अनुजा के अवतरण के पश्चात नई पीढ़ी ने अपना स्थान ग्रहण कर लिया था। बाबा के स्नेह पर सभी का समान अधिकार बना रहा।

परिवार बढ़ने के साथ–साथ व्यवस्था की दृष्टि से, सभी की सहमति से स्न 2002 में हमारे पुराने घर के ठीक सामने मैंने एक और मकान बनवा लिया था। बाबा, माँ–पापा और चाचा का फुर्सत का काफी समय वहीं बीतता था। कल्पना से सभी की अच्छी पटती थी पर बाबा की बातों को पूरा ध्यान देकर और नजरें मिलाकर प्रतिक्रिया देते हुए सुनना होता था। थोड़ा सा भी ध्यान हटने अथवा तवज्जो नहीं मिलने की स्थिति में वे ''अच्छा अब मैं चलता हूँ'' कहकर तुरंत उठकर चलने लगते थे। फिर उन्हें प्यार से समझाना पड़ता था।

बढ़ती उम्र को लेकर वे प्रायः चिंतित हो जाया करते थे। उनकी चिंता मूलतः, अंत तक आत्म निर्भर बने रहने को लेकर होती थी। उनको लगता था, कहीं बिस्तर पर न पड़ जाऊँ। सभी उन्हें अपने ढंग से समझाते थे। बुढ़ापे में उनका मन बच्चों जैसा और भी सरल हो गया था। हास परिहास में त्रिलोक जी का यह कहना भी याद आता है कि, आप तो मुझसे 02 दिन छोटे हैं। (त्रिलोक जी का जन्म–दिन 15 दिसंबर है।) इस पर वे हँस दिया करते थे।

उन्हें अपनी माँ से बहुत लगाव था। घर लौटते समय थोड़ी मात्रा में अपनी पसंद की सब्जी/भाजी प्रायः ले आते और दादी को बनाने के लिए कहते थे। दादी के हाथों में कुछ खास बात तो थी, तेल–मसाले के कम उपयोग के बावजूद उनके बनाये साग का स्वाद नहीं भूलता। दादा जी के नहीं रहने के बाद उनका जीवन अत्यधिक चुनौतियों भरा रहा। तब मेरे पिताजी संभवतः 5 वर्ष के, चाचा जी दो–ढाई वर्ष के, और बुआ जी एक वर्ष से भी कम उम्र की रही होंगी। बाबा थोड़े बड़े थे संभवतः 18 वर्ष के रहे होंगे।

तब जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने माँ के संघर्षों को नजदीक से देखा था और उनके कंधे से कंधा मिला कर जो कुछ संभव हो सका, वह सब किया। वे बताते थे कि, हमारी दादी जी के समृद्ध परिवार में ब्याही जाने के बावजूद तत्कालीन विपरीत परिस्थितियों के कारण दादाजी के साथ उन्हें परिवार से अलग होना पड़ा था। दादाजी अपने भाईयों में सबसे छोटे थे। बाहर किराये के मकान में रहते हुए उनके देहान्त के बाद परिवार को कोई सहारा नहीं मिलने से बाबा और दादी के लिए कठिन संघर्ष की स्थिति निर्मित हो गई थी। संघर्षों के साथ–साथ साहित्य साधना भी चलती रही। धीरे–धीरे परिवार संभलता गया। दोनों छोटे भाई अपने पैरों पर खड़े हो गये थे। तब तक काफी समय बीत चुका था। संभवतः इसीलिए बाबा आजीवन अविवाहित रहे।

वर्ष 1988, अप्रेल का महीना याद आता है, जब उनकी माँ पेट के कैंसर से ग्रस्त मृत्यु–शैय्या पर पड़ी हुई थीं। बाबा बहुत दुःखी थे। परिवार के सभी सदस्य यथा–संभव उनकी सेवा में जुटे रहते थे। बाबा उनके कमरे में जाने एवं उनसे रुबरु होने से डरते थे। प्रायः वे दादी के कमरे में बाहर से झांका करते थे। दादी कहती थी –"काबर डरथस रे लाला, सब ला तो जाय के हे, एक दिन" (क्यों डरते हो लाला, सभी को तो एक दिन जाना ही है।" बाबा को वे ''लाला'' संबोधित करती थीं। अंततः 18 अप्रेल 1988 को वे अपार कष्ट के सागर से मुक्त होकर देवलोक वासी हुईं। हम सबने अपने परिवार का मूल स्तंभ और ममतामयी, निर्विकार दादी को खो दिया था। तब बाबा की पीड़ा उनकी पुस्तक, "गीत–धन्वा" की क्षणिकाओं में कुछ यूँ व्यक्त हुई :–

ऽ आंतरिक स्फूर्ति मेरी खो गयी,
हृदय–धन की पूर्ति मेरी खो गई,
वेदना–ही–वेदना में एक दिन–
वेदना की मूर्ति मेरी खो गयी!

ऽ थक गये तूफान, वह जल–पोत हो तुम!
तमिस्त्रा कायल हुई, वह जोत हो तुम!
जन्म दात्री! देह तुमने त्याग दी, पर–
प्रेरणा का एक अमृत–स्त्रोत हो तुम!

हृदय सूना, प्राण सूने,
नयन सूने, कान सूने,
क्या करे भगवान–खोली, (पूजा कक्ष)
माँ बिना भगवान सूने।

जिजीविषा, उनकी जबर्दस्त थी। लगभग 90 वर्ष की आयु में एक बार उनके कमरे के बाहर की तरफ पहली मंजिल पर जाने के लिए बनी सीढ़ी से गिर जाने के कारण उनके दाहिने कलाई की दोनों हड्डियाँ टूट गईं थी। आनन–फानन में उन्हें डॉ. लखन ठाकुर के पास ले जाया गया था। एक्स–रे करने के बाद उनके हाथ में प्लास्टर लगाकर जरुरी हिदायतें दी गई। प्लास्टर ड़ेढ महीने के बाद निकाला जाना था। परंतु 3–4 दिनों में ही उन्हें अत्यंत असुविधा होने लगी थी। दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होने के लिए भी वे किसी की मदद लेना पसंद नहीं करते थे। बारम्बार समझाने के बावजूद, बड़ी मुश्किल से 7–8 दिन रखने के बाद अंततः उन्होंने स्वयं ही प्लास्टर को काट कर फेंक दिया था। कुछ मामलों में वे किसी की सुनते नहीं थे। फिर भी आश्चर्यजनक रुप से लगभग 02 माह में वे ठीक हो गये थे। विचारणीय है कि, उन दिनों वे किस तरह अपना रोजमर्रा का काम निपटाते रहे होंगे।

इसके पश्चात उनका पैदल घूमना बहुत कम हो गया था। खास कर बैंक और पोस्ट ऑफिस जाने के लिए वे स्वयं निकल पड़ते थे। फिर भी थोड़ा–बहुत घूमना तो जरुरी होता था। इसके लिए वे रिक्शे का प्रयोग करने लगे थे। मोहल्ले के आस–पास एवं पावर हाउस चौक पर रिक्शेवाले मिल ही जाते थे। अधिकांश उन्हें पहचानते भी थे। उस समय की दो घटनाएँ याद आती हैं :–

एक – किसी दिन बैंक से लौटने के बाद उनकी जेब में 10–10 के कई नोट रहे होंगे। घर लौटने पर रिक्शे से उतर कर वे रिक्शेवाले को एक–एक करके 10–10 के नोट बारी–बारी से दिये जा रहे थे। रिक्शा वाला भी उनसे पैसे लेता ही जा रहा था। इस घटना को माँ पहली मंजिल से देख रही थीं। वे प्रायः टोकती नहीं थीं। परंतु 8–10 नोट देने के बाद भी जब बाबा और रिक्शा वाला पैसे देने–लेने में लगे हुए थे तो माँ से रहा नहीं गया। उन्होंने

बाबा को घूर कर देखा, जैसे किसी बच्चे को डाँट रहीं हों – ''कि, ये क्या कर रहे हो!'' तब बाबा मुस्कुरा कर अंदर चल दिये थे। रिक्शे वाले को भी अच्छी डांट पड़ी – ''इस तरह किसी सरल बुजुर्ग व्यक्ति को लूट लोगे क्या? रिक्शावाला भी डाँट खाने के बावजूद इस तरह अप्रत्याशित मेहनताना पाकर खुशी–खुशी चला गया था।

दो – "इसी तरह किसी दिन रिक्शा–भ्रमण करके जब वे घर लौटे और हमेशा की तरह अपने हिसाब से रिक्शे से धीरे से, संभलकर उतरने लगे। इतने में रिक्शे वाले को लगा कि, कहीं वे गिर न जावें। उसने बाबा का हाथ पकड़ कर सहारा देना चाहा। साथ ही "संभलकर उतरो बाबा जी" शायद इस तरह, कुछ हिदायत भी देने लगा था। तब अप्रत्याशित रूप से बाबा बहुत नाराज हो गये थे। उन्हें अनावश्यक सहारा दिया जाना और बाबा जी (बुजुर्ग का समरुप) कहा जाना काफी खल गया था। यह सब दूर से देख कर हम लोग भी अचंभित थे। इससे मिलती जुलती एक और घटना उल्लेखनीय है, हमारे विवाह के पश्चात कल्पना द्वारा भोजन परोसे जाने के दौरान ''बाबा'' संबोधित किये जाने पर भी वे काफी उखड़ गये थे। ले–देकर उन्हें ''ताऊ जी'' संबोधित किये जाने पर बात बनी। माँ उन्हें ''दादा जी'' संबोधित किया करती थीं। वे केवल हम भाई–बहनों के ही बाबा थे।

उनके स्वभाव में किसी प्रकार का भी सहारा लेना गवारा नहीं था। अशक्त होने के बावजूद चलने के लिए उन्होंने कभी छड़ी का सहारा नहीं लिया। नजरें कमजोर होने के बाद भी कभी चश्मा लगाना पसंद नहीं करते थे। जब उनका ठीक से सुन पाना कम हो गया था तो उनके लिए कान का मशीन लाया गया था। त्रिलोक जी ने भी उन्हें अच्छी कंपनियों के कान की मशीन लाकर दिया था। परंतु उन्होंने असहजता व्यक्त करते हुए इसका भी प्रयोग नहीं किया। बाद में पढ़ने के लिए उन्हें लिखावट को आंखों के बहुत नजदीक लाना पड़ता था और टार्च का भी उपयोग करना पड़ता था। साथ ही बैठकों में सूचनाओं का आदान प्रदान करने के लिए कागज–कलम का उपयोग करना पड़ता था, उन्हें लिखकर समझाना होता था। 92 वर्ष की उस आयु में वे काफी अशक्त हो गये थे, कमर भी थोड़ी तिरछी हो गई थी। फिर भी किसी तरह अपना सारा काम स्वयं ही किया करते थे। कमरे में उनके

किसी भी सामान को छूने की इजाजत नहीं थी। काम वाली को तो बिल्कुल भी नहीं। माँ और बहुएँ उन्हें किसी तरह समझा–बुझा कर कुछ दिनों की आड़ में उनके बिस्तर, सामानों और कमरे की सफाई करवा दिया करती थीं। उनके सभी सामान यथा–स्थान व्यवस्थित रुप से रखना होता था। ताकि उन्हें परेशानी ना हो।

संभवतः सितंबर–अक्टूबर 2012 के आसपास वे अपने कमरे से लगे वाश–रुम में फिसल कर गिर पड़े थे। जिससे उनके कमर में चोट आई थी। वह चोट उन्हें बिस्तर पर ले आई। जिसके कारण उनका लगभग नौ माह का अंतिम समय काफी कष्टप्रद रहा। न चाहते हुए भी उन्हें तब सहारा लेना ही पड़ता था। परिवार में सभी ने यथा–शक्ति उनकी सेवा की। उनकी सभी दैनिक आवयकताओं का ध्यान रखा जाता था। परंतु धीरे–धीरे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। और लगभग 93 वर्ष की आयु में 14 अगस्त 2013, संध्या को उनका देवलोक गमन हुआ। स्वतंत्रता दिवस के दिन उनका अंतिम–संस्कार संपन्न हुआ। नियति के आगे सभी बेबस थे। परिवार ने उनके जाने से जो कुछ खोया, उस क्षति की भरपाई संभव नहीं है। उनका कर्मठ और अनुशासित जीवन सभी के लिए प्रेरणादायक है। साहित्य–साध ाक लाला जी से विरासत में प्राप्त उनका सृजन–संसार साहित्य समाज के लिए अनमोल धरोहर है।

विनय कुमार श्रीवास्तव
डोकरीघाट पारा, जगदलपुर
मो.–9302267230

बस्तर माटी लोक सांस्कृतिक मंच जगदलपुर का संस्मरण लाला जगदलपुरी को समर्पित

आज भी याद है लाला जगदलपुरी जी का बस्तर माटी सांस्कृतिक संस्था का संरक्षक बनना एवं उनके द्वारा लिखित वंदना गीत!

सन 1987 में पंजीकृत संस्था लोक सांस्कृतिक मंच जगदलपुर के संरक्षक श्री लाला जगदलपुरी से हुई चर्चा–

बस्तर माटी लोक सांस्कृतिक मंच जगदलपुर के कलाकार, पदाधिकारी, संयोजक नरेंद्र पाढ़ी अध्यक्ष स्वर्गीय श्री भागीरथी महानंदी व सचिव श्री गिरजा नंद ठाकुर सभी, बस्तर के साहित्यकार, लेखक, कवि, गीतकार, लोक संस्कृति के जानकार सरल मन के व्यक्ति को हमारी सांस्कृतिक संस्था का संरक्षक बनाने उनके कवि निवास डोकरीघाटपारा पहुंचे। तब लालाजी आराम कुर्सी पर बैठ पुस्तक पढ़ने में लीन थे। हमने लाला जी का अभिवादन किया। उन्होंने सस्नेह बैठने को कहा। वैसे कला संस्कृति के क्षेत्र में लालाजी से पूर्व परिचय रहा है।

उन्होंने मुस्कुराते हुए पूछा –'कहो कैसे आना हुआ ?'

हमने कहा –'बस्तर की स्थानीय बोली हल्बी में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति के लिए हम लोगों ने 'बस्तर माटी' संस्था का गठन किया है।'

'बहुत अच्छा नाम है।' लाला जी ने कहा। 'यह नाम बस्तर का प्रतिनिधित्व करता है।'

हमने अपनी बात रखते हुए लाला जी से कहा –'इस सांस्कृतिक संस्था का भार, संरक्षक पद, आपको सौंपने का निर्णय लिया गया है। क्या आप हमारी संस्था का संरक्षक पद स्वीकार करेंगे?' हम सभी ने सहमते हुए कहा, क्योंकि लाला जी इस तरह की बातों और पदों को स्वीकार नहीं करते थे।

लालाजी ने धीरे से कहा –'यह पद तो किसी आर्थिक रूप से संपन्न व्यक्ति को दिया जाता है, मुझे भार सौंपने क्यों कहा जा रहा है ?'

हम लोग पुनः निवेदन करते हुए कहे –'सत्यता यही है लालाजी कि बस्तर माटी संस्था यहां की स्थानीय बोली की संस्था है और आप लोकबोली के सिद्धहस्त जानकार हैं। हम लोगों ने विचार किया है कि आपसे अच्छा

यहां की संस्कृति को जानने वाला कोई नहीं है।'

पुनः हम लोगों ने निवेदन किया। लाला जी भावविभोर हो उठे, और उन्होंने मुस्कुराते हुए अपनी स्वीकृति दी। हम सभी कलाकार सांस्कृतिक संस्था के संरक्षक बनने का सौभाग्य पाकर गौरवान्वित हुए।

खैर यह बात थी लाला जी की महानता की।

लाला जी की एक और बात–

पुनः हमने लाला जी से एक वंदना गीत हल्बी में लिखने का आग्रह किया। जिसमें बस्तर की संस्कृति एवं देवधामी का वर्णन रहे, जिसे बस्तर माटी कार्यक्रम में मंच पर, कार्यक्रम आरंभ करने के पूर्व गाया जा सके। लालाजी ने हल्बी में एक ऐसा वंदना गीत लिखा जिसमें बस्तर के सौंदर्य, संस्कृति एवं बस्तर के देवी देवताओं का वर्णन रहा।

इस गीत को हमारे कलाकारों ने बस्तर के देवपाड़ में संगीतबद्ध किया। गीत अभ्यास आरंभ हुआ। हारमोनियम, तबला, ढोलक, मजीरा, तुड़बुड़ी के साथ,

धन–धन बस्तर माय धरतनी
तुचो मया चो छांय ए धनी।

एक कलाकार स्वर्गीय श्री अनंत राम स्वर्ण जो नृत्य विद्या में पारंगत थे और संस्था के सांस्कृतिक प्रभारी थे उनसे एक थाल पकड़वा कर आरती करने को कहा। सभी कलाकार गीत गाने लगे जैसे जैसे देवपाड़ में संगीतबद्ध गीत आगे बढ़ता गया, देवी–देवताओं का वर्णन होने लगा, अभ्यासरत् कलाकार के पैर कांपने लगे। कलाकार ने आगे अभ्यास करने से मना कर दिया।

पुनः एक कलाकार गिरजा नंद ठाकुर जो ग्रामीण क्षेत्र से अच्छी तरह परिचित रहे वे स्वयं इच्छा जाहिर करते हुए थाल पकड़कर अभ्यास आरंभ किए। जब देवपाड़ में तुड़बुड़ी, ढोलक, मजीरा के साथ कोरस गीत आरंभ हुआ, तब उस कलाकार के पैर कांपने लगे। लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी और कहने लगा गीत बंद नहीं करना। गाते रहो, जल्दी–जल्दी गाओ, जोर से गाओ। और देखते ही देखते कलाकार को देवी चढ़ने लगी। उसने अपने शरीर से कमीज निकाल फेंक दिया। हमने देवी का भयावह रूप देखा। कुछ

कलाकार डर कर भाग गए। कुछ कलाकार डरकर सहम गए थे। धीरे–धीरे कलाकार जमीन पर गिर गया, बैठ गया। पसीने से लथपथ देवी कलाकार को देखते ही रह गए हम। सांस्कृतिक संस्था के एक बुजुर्ग कलाकार जो देवी देवता को समझते थे, उन्होंने हल्बी बोली में पूछना आरंभ किया–

'तुमी कोन आहास, कसन इलास, आमी पीला मन के माफी दियास। खेल खेल ने आमी गोटोक मंडली बनालूं से।'

झूमते हुए देवी ने कहा 'मय दंतेश्वरी मांय चो छांय आंय। तुमी मोके गीत गाउन गाउन हाक दिलास, मय अंदाय तुमचो लगे इलेंसे। मंडली कार्यक्रम ने मोके नी छांड़ा, जहां बले तुमचो मंडली चो कार्यक्रम होयदे, मोचो फोटो आउर लीमऊ जरूर संगावासे। तुमी नगत करासास। तुमचो मंडली खुबे आगे बोढ़दे, नांव होयदे।'

अब देवी को शांत करना था। हमारी ही संस्था के कलाकार स्वर्गीय अनंतराम स्वर्ण ने देवी शांति गीत गाया।

'डोकरी आया मांय फिरंता
खाऊन पान चोपा देस तुइ।'

धीरे–धीरे देवी शांत हुई। हम सभी कलाकार सिहर उठे थे। देवी ने हमें प्रसाद के रूप में चावल दिया। हमने आशीर्वाद प्राप्त किया।

इसी तरह हमारी संस्था बस्तर माटी ने बस्तर जिले, सुदूर अंचलों में, शहरों में अपनी प्रस्तुति दी। हमारी संस्था ने सफलता प्राप्त की। हम कार्यक्रम की शुरुआत में देवी मां का आह्वान कर कार्यक्रम की शुरुआत करते।

आज लाला जी हमारे बीच नहीं रहे लेकिन आज भी उनके द्वारा रचित वंदना गीत उनकी याद दिलाता है।

नरेंद्र पाढ़ी
संस्थापक–संयोजक
बस्तर माटी लोक सांस्कृतिक मंच जगदलपुर
पथरागुड़ा, वीर सावरकर वार्ड जगदलपुर
मो.–7879375099

लाला जगदलपुरी जी, जैसा मैंने देखा

साहित्य में रूचि के कारण लाला जगदलपुरी का नाम मैंने तरूणाई में सुना। शिक्षक प्रशिक्षण काल में अनेक प्रशिक्षार्थी मित्र बस्तर से साथ रहे। फलतः लाला जी के बारे में लगभग सुनता ही रहता था।

मुझे वर्ष का ध्यान तो नहीं है, किन्तु आकाशवाणी जगदलपुर के शुभारम्भ कार्यक्रम की रेडियो रिपोर्ट आकाशवाणी से प्रसारित हो रही थी और मैं गाँव में, बाहर से घर आया तो लाला जी का काव्यपाठ चल रहा था। थोड़ा ही सुन पाया और काव्यपाठ पूरा हो गया। मैंने घर के लोगों से पूछा ये काव्यपाठ किसने किया? उत्तर मिला तो बड़ा पश्चाताप हुआ कि पहले घर आ जाता तो पूरा सुन पाता। रचना छत्तीसगढ़ी में थी और बहुत अच्छी लगी।

प्रशिक्षणोपरान्त नियुक्ति बस्तर में होने का आदेश मिला तो मन में आया कि लाला जी से भेंट होगी। मेरा अनुमान था बस्तर क्षेत्र जगदलपुर के आस–पास तक सीमित है। वास्तविकता इसके विपरीत है। जगदलपुर से दंतेवाड़ा, दंतेवाड़ा से मद्देड़ भोपाल पटनम का ज्ञान हुआ।

जगलपुर से पटनम की दूरी 250 कि मी तथा दिन में जगदलपुर से केवल दो बसें पटनम जाती थीं। हमारे लिए जगदलपुर जाना हिमालय चढ़ने जैसा था। ग्रीष्मकालीन, शीतकालीन व दीपावली अवकाश में गाँव आने की आतुरता रहती थी। फलस्वरूप लाला जी से भेंट करने की इच्छा मन ही मन की रही।

सन का ध्यान मुझे सही –सही नहीं है, लाला जी की गज़लों का संग्रह 'मिमियाती जिन्दगीः दहाड़ते परिवेश' का प्रकाशन हुआ। संभतः 1983 में। उस समय श्री लक्ष्मी नारायण पयोधि जी की अगुआई में पल्लव साहित्य समिति के तत्वावधान में संग्रह आधारित आयोजन 'स्वीकार लाला जगदलपुरी 'हुआ। उस आयोजन पर संग्रह की समीक्षा का दायित्व मुझे सौंपा गया। यद्यपि भाई माँझी अनंत को भी यही दायित्व मिला था, किन्तु उन्होंने लाला

जी के व्यक्तित्व पर केंद्रित आलेख का पठन किया। श्री बहादुर लाल जी तिवारी के उपस्थित ना हो पाने के कारण पयोधि जी ने लाला जी पर परिचयात्मक आलेख का पठन किया।

उसी कार्यक्रम में लाला जी से पहली भेंट हुई। मेरे लिए इस तरह का पहला आयोजन था। मैंने बहुत तैयारी की। अनेक संदर्भित साहित्य भी पढ़े, और तीन पृष्ठ का समीक्षात्मक आलेख तैयार किया।

समीक्षा में कुछ बातें लाला जी को बहुत चुभ गयीं और वे आग बबूला हो गये। उन्होंने नाराज़गी में कुछ शब्द भी कहे। मुझे पता नहीं था कि वे मेरी समीक्षा की बातों से क्रोधित हो रहे थे। आलेख पठन पश्चात मैंने पाया कि उनका क्रोध शांत ही नहीं हो रहा था। वातावरण ऐसा बना कि मैं अपराधबोध से घिरने लगा था। समीक्षा पश्चात मैं लाला जी के ही निकट बैठा था। बहुत समय तक लाला जी का क्रोध शांत नहीं हुआ तो अध्यक्षता कर रहे विद्वान श्री ब्रजबिहारी जी शर्मा जो हिन्दी और संस्कृत के बहुत अच्छे विद्वान थे, ने हस्तक्षेप किया और, समीक्षा की जिस बात से लाला जी नाराज थे उसके समर्थन में कुछ शास्त्रीय बातें कही, तब कहीं बहुत समय पश्चात वातावरण सहज हुआ। सांध्यकालीन कविगोष्ठी में भी इस बात की छाया दिखाई दी।

इस परिचय के पश्चात मैं जब भी जगदलपुर जाता लाला जी से भेंट अवश्य करता था। प्रायः वे मुझे राजमहल के पास एक दुकान के पास मिल जाते थे। अभिवादन व परिचय देने के पश्चात वे मुझे हमेशा कहते अरे आपने तो मेरी रचना की समीक्षा की थी हाँ, याद आया, आइये, चाय पीते हैं, ऐसा कह चाय पिलाते। चाय के पैसे कभी भी नहीं देने देते। कहते मेरे रहते आप कैसे देंगे। ये भेंट सड़क पर ही होती वे टहलने निकल जाते, मैं अपनी राह चला जाता।

बीच में एक बार किसी कार्य से लाला जी का पटनम आगमन हुआ था पयोधि जी के घर रुके थे। मैं और मेरे दम्पाया के साथी श्री जनक राम वर्मा जी देर रात तक लाला जी के श्रीमुख से मुख्य रूप से हल्बी रचनाएँ सुनते रहे।

बहुत रात बीत जाने के बाद हम लोग साइकल से अपने निवास पहुँचे।

मुझे ठीक से ध्यान नहीं है एक बार लाला जी और ग़नी आमीपुरी जी पटनम आये थे मैं उस समय चेरपल्ली में रहता था। मेरे साथ शायद माँझी अनंत भी थे हम लाला जी और ग़नी आमीपुरी जी को सकलनारायण मंदिर और पोषड़पल्ली पहाड़ की गुफा दिखाने गये थे।

नदी पार कर सकलनारायण दर्शन पश्चात् पहाड़ की चढ़ाई साठ की आयु के बावजूद लाला जी में थकान नहीं दिखाई दे रही थी। पहाड़ चढ़ाई के क्रम में अनेकों बार विशेषकर पेड़ों की पहचान के संदर्भों में मुझे ऐसा लगा कि लाला जी ये सब क्यों नहीं जानते, जबकि उन्हें बस्तर का विशेषज्ञ माना जाता है।

अचानक मेरा भ्रम गुफा के पास तब टूटा जब पोषड़पल्ली गाँव से जो स्थानीय गाइड साथ था उसने मुझसे पूछा –गुरू जी ये कहाँ के माँझी हैं? लालाजी बस्तर में इतना रचे –बसे थे कि बस्तर के आदिवासी उन्हें परगना माँझी समझते थे।

श्री लक्ष्मी नारायण पयोधि जी के जगदलपुर आने तथा मेरे मामा जी के जगदलपुर पदस्थ होने के कारण मेरा जगदलपुर आना –जाना बढ़ गया, तब पयोधि जी और लाला जी के साथ मैं भी कभी –कभी होता था। लाला जी शारीरिक रूप से भी विशाल थे। वे लम्बे –लम्बे डग भरते, पयोधि जी को अभ्यास था किंतु मैं थक जाता था। लगभग मुझे दौड़ने जैसे चलना पड़ता था, फिर दूरी भी कम नहीं होती थी राजमहल के पास से कभी गंगा मुंडा तक तो कभी हवाई अड्डे तक और कभी धरमपुरा तक। मुझे चलने का इतना अभ्यास नहीं था। मैं थक जाता था।

मैं जब भी चला लगभग मौन रहकर, चलते चलते सुनते रहता था। मैंने कभी लाला जी से कभी कोई प्रश्न नहीं पूछा। उनके श्रीमुख से जो कुछ सुनने को मिला उससे अनुमान लगा कि उन्हें इस बात का मलाल था कि जितना सम्मान और महत्व साहित्यजगत में उन्हें मिलना चाहिए था वह उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। यह कि चालाकी और चाटुकारिता के बल पर लोग आगे बढ़ जाते हैं। धूर्त और व्यावसायिक प्रवृत्ति के लोगों ने उनके साथ

अनेकों बार छल किया है।

पिता का पलायन, माँ का संघर्ष और कम उम्र में मिले पारिवारिक दायित्वों की पीड़ा उन्हें व्यथित करती रहती थी।

लाला जी का एक रूप मुझे तब पता चला जब वे मुझे आग्रह पूर्वक अपने घर ले गये। रात हो रही थी उनका कमरा अलग था। वहाँ उन्होंने मुझे एक पत्र दिखाया जो रींवा से आया था। आयोजक ने पारिश्रमिक की बात पूछी थी किन्तु पत्र की शब्दावली दोषपूर्ण थी 'आप कितना पारिश्रमिक लेंगे, इसे नज़र अंदाज़ करते हुए आपको आमंत्रित कर सकें। 'नज़र अंदाज़ का अर्थ जिनको पता नहीं है वे क्या आयोजन करवाएंगे, उनके कार्यक्रम का स्तर क्या होगा इसलिए मैं मना करने के बदले अनेकों गुना पारिश्रमिक लिखूंगा, यह बोलते हुए भी वे क्रोधित हो रहे थे।

चारामा आ जाने के बाद जगदलपुर जाना कम हो गया।

पयोधि जी भोपाल चले गये, मामा जी राजनांदगाव आ गये अतः केवल लाला जी से मिलने जाऊँ यह महँगा शौक होता।

मेरी कुछ रचनाओं का प्रसारण हुआ। तब किसी विषय में श्री लक्षमेंद्र चोपड़ा जी से मिलने की इच्छा से जगदलपुर गया वे अन्यत्र कहीं गये थे तब लाला जी से मिला था। शायद 1987 या 88 में मैं किसी कार्य से जगदलपुर गया तब लाला जी से भेंट की इच्छा से उनके घर गया, पता चला वे सोकर उठे नहीं हैं। पूछने पर पता चला कि 9 बजे के आस – पास ही मिलना हो सकता है। चूँकि उसी दिन चारामा पहुँचना था इसलिए भेंट नहीं हो पायी।

लाला जी से भेंट हो जाए इसे ध्यान में रखते हुए चारामा के एक साहित्यिक आयोजन में उन्हें सम्मानित करने की इच्छा से उन्हें आमंत्रित करने और सहमति के लिए जिस साथी का जाना हुआ उनकी प्रगल्भता से लाला जी बिदक गये और उन्होंने आने मना नहीं किया, उसके बदले उन्होंने कहा मेरा रायपुर में उपस्थित होना आवश्यक है, और यह कह उन्होंने बात टाल दी।

इसके बाद कभी लाला जी से भेंट नहीं हो सकी। स्वास्थ्य कारणों से

उनकी सक्रीयता भी कम हो गयी थी।

लाला जी के संबंध में मैं कोई बात अपनी ओर से नहीं कह सकता। हाँ, यह अवश्य है कि उनके साथ बीता हर पल मेरे लिए महत्वपूर्ण था।

उन्हें मेरा नमन्!

राजकुमार पाण्डेय
मोतीबाड़ी, परशुराम वार्ड
भाटापारा 493218

लाला जगदलपुरी मेरी लेखनी में

बाल्यावस्था से आपको देखा अपने ही घर के आंगन में। मेरे दादाजी स्वर्गीय पंडित गंगाधर सामंत 'बाल' जो प्रगतिशील काव्यधारा के बस्तर जिले के प्रणेता कहलाते हैं। उनके साथ उठते बैठते देखा।

वह समय था जब जगदलपुर शहर में साहित्य की रचना एक कष्टप्रद कार्य था उस समय लालाजी की बैठक हमारे भैरमगंजपारा सामंत गली के सबसे बड़े घर के पहले कमरे में, जो मेरे दादाजी की बैठक हुआ करता था वहीं होती थी। एक तरफ एक पलंग एक बड़ी टेबल जिसमें किताबें लगी रहती थीं। एक आराम कुर्सी अक्सर बहस बात पर होती थी कि कुर्सी पर कौन बैठे, जीत तो जाहिर है लाला जी की होती थी। 'अतिथि देवो भव' की तर्ज पर अंततः दादा जी यह कहते थे –जा तू बैठ जा। मजे की बात है यह दृश्य महीने–दो महीने में उपस्थित हो जाता था।

उन दिनों काव्य गोष्ठियां तो होती थीं पर मेरी आयु यह न थी कि मैं वहां जाऊं। पर, घर पर जब भी लोग आते तो मैं वहां मंडराती रहती और दादाजी के काम झूठ मूठ ही सही करती थी।

कभी मैंने दोनों ही कलमकारों को शांति से बात करते देखा या सुना ही नहीं। लालाजी व्यंग में बात करते और दादाजी क्रोध में भरकर उन पर चिल्लाते, बस मीटिंग समाप्त। पर फिर सप्ताह बीतते–बीतते दादाजी के पास फिर लाला जी हाजिर। ऐसा नहीं कि इसमें कोई स्वार्थ था, यह तो दो कलमकारों की एक दूसरे के प्रति गहन आत्मीयता थी।

दादा जी जब अपना खंडकाव्य इंद्रप्रस्थ लिख रहे थे उस समय मैं कक्षा 10 में थी। मैंने इस रचना के समय आप दोनों का तालमेल, विचार अभिव्यक्ति को देखा और सरल सहज रूप से लाला जी को सुनते समझते भी देखा।

उनके व्यक्तित्व को जब पढ़ा तो जाना पर उनको देखकर उनके लंबे बाल, माथा सपाट और धोती का किनारा हाथ में लेकर चलने का तरीका, मुझे किसी बंगाली परिवेश, यूं समझिए बंगाली बाबू होने का आभास कराता।

धीरे–धीरे समझ आया कि वे डोकरी घाट पारा में रहते हैं और लाला जगदलपुरी हैं।

समय के साथ उनकी लेखनी बंद हुई पर मैंने उन्हें सक्रिय रूप में देखा। दादा जी के देहांत पर मेरे पिताजी ने एक छोटा सा संवेदना भोज रखा जिसमें सभी कलमकार, वरिष्ठ–कनिष्ठ आमंत्रित थे वहां मैंने लाला जी से भेंट की, कुछ बातें की। तब तक मैं शासकीय सेवा में आ गई थी। 1987 की बात है, पर व्यस्तता कहिए या नासमझी, मैं फिर कभी मिलकर चर्चा नहीं कर पाई।

पर भेंट हुई। जब मेरे काव्य संग्रह पर उन्हें समीक्षा लिखना था परंतु अस्वस्थता और मानसिक पीड़ा के चलते उन्होंने मना किया। मैंने दुखी होकर प्रश्न किया –'क्यों ?' तो उनका उत्तर था –'अब न कुछ पढ़ने की इच्छा होती है न लिखने की।'

उनका यह मर्मस्पर्शी उत्तर कचोटता रहा। लगा ये वही लालाजी हैं जिनकी वाणी, लेखनी में उर्जा भरी थी। जिनकी रचनाओं पर आज शोध हो रहे हैं। वही हमारे लाला जी अशक्त अवसाद ग्रस्त हो गए।

उनकी लेखनी को समझना सरल सहज है। बस्तर की लोक संस्कृति परंपरा और बस्तरिया जनजाति के समस्त आयामों को आपने कलम से संरक्षित किया है। वही तो चिरस्थाई है!

शत शत नमन।

डॉ. सुषमा झा
जगदलपुर
मो–9425261018

रहते स्नेहिल स्मृतियों में–दादाजी–

वे अहसास की तरह, रहते सदैव पास।
सिर पर रखते हाथ हैं, बढ़ जाता विश्वास।।

हाथ में धोती का छोर पकड़े, चिंतन की उड़ान भरते हुए दादा जी! आगे बढ़ते कदम द्वार पर रूक जाते थे!

जी हाँ, रूकते ही नहीं बल्कि हमारे सीढ़ी से उतरते तक वे मेरे जुड़े हाथ के उत्तर में स्वयं पास आकर–'बिटिया!' कहते। तब तक पिताजी का अभिवादन लेकर बातचीत करते–करते।

कभी चाय पी लेते या लेखन की कुछ बातें....!

यही क्रम था उनका, घर के पास से गुजरते हुए!

सुख, आनंद का पल बन जाता था। जब वे आते– जाते बैठकर आत्मीय चर्चे, गपशप ही करते, हँसते, मुस्कुराते उन्मुक्त बैठते।

एक दिन की बात है। पर्दे की ओट से माँ ने कहा –'अमिता! हम गर्म पकौडी बना रहे हैं। अभी रोककर रखना दादाजी को।'

जैसे ही पकौड़े की बात आई सहर्ष सहमति दे दिए। (उन्हें बहुत पसंद थी पकौड़ी)

पकौड़ी के बाद चाय फिर..... घर का बना पान।

जिसे माँ ने बारीक सुपारी डाल थोड़ा नरम कर दिया। दादाजी खुशी से हँसते हुए चबाते हुए कहने लगे –'पान भी!'

.'वाहह्.....ह हा हा!' कहते हुए हँस पड़े थे। यह हँसी की खनक उनकी अन्तर्रात्मा की होती थी। (पान खाने की आदत नहीं थी उन्हें। लेकिन आत्मीयता में पान की स्वीकृति ही अनमोल स्मरण हैं।)

यद्यपि कविता भी सुनाते, पर चर्चा पारिवारिक आत्मीय हुआ करती थी।

पिताजी को गिरजा (गिरजा शंकर त्रिवेदी) ही कहते थे। बड़े थे दादाजी, पिताजी से।

हमारी माँ उनके आगे घूँघट करती थीं।

उनके व्यक्तित्व के विराट स्वरूप में जो अपनापन स्नेह मुझे मिला, वह मेरे प्रति पिता तुल्य ही रहा। यह मेरा परम् सौभाग्य है कि 'साहित्यसागर' प्रेमामृत उड़ेलता रहा मुझ पर।

कुछ रहस्य, कुछ पीड़ा, कुछ छल छद्म, बाज़ारवाद और रिश्तों के दर्द में रिसते छाले, साहित्यिक व्यापार, धोखा, सब कुछ उनकी अनुभूतियों के साथ चले गए।

रह गई अनुदित स्मृतियाँ!

दुनिया से जाने के पहले जब श्रवण शक्ति कमजोर हो चली थी, तब भी 'दादाजी' कहते ही

उत्तर में –'कौन ? बिटिया!' कहते उठ गए थे उस दिन भी। फिर दो घण्टे तक बैठकर बस! वही बातें। उसने मेरा वह कुछ अपने नाम से प्रकाशित करवा लिया। बिटिया.....!'

कुछ बातें अनकही कुछ पीड़ा अनदेखी जिन्हें समझने का पल अब नहीं आएगा लौटकर।

देखती रही उनके कमरे की पुस्तकें और उनका वही ओज! बस उम्र ने दस्तक दी थी। सबकुछ वैसा ही था।

डोकरी घाट कवि निवास में अब उनकी कीर्ति अशेष।

उनके लंबे बाल, तेज चाल ओज, तेज, त्रिपुंड भाल। सरपट राह पथ की पहचान बताते हैं। हाथ में धोती का छोर और छत्ता, आँखों में झूलते हैं। आज भी लग रहा द्वार से निकलेंगे। फिर ठिठक कर रूक जाएँगे––बिटिया के पास, दादाजी!

महान व्यक्तित्व के लिए, कुछ कहना सूरज को दीपक दिखाने की तरह है।

उनकी यह पँक्ति हमेशा राह दिखाती है।

'देखते है दर्पण,
कहते हैं चेहरा देख रहा हूँ।'

————————————————————

उन्हें इस बात का घमंड है
कि उन्हें किसी बात का घमंड नहीं।

कटु सत्य है, उनकी पँक्तियों में–
मेरा चेहरा मुझे डराता
दर्पण कितना बदल गया है।
––––––––––––
दुर्जनता की पीठ ठोंकता
सज्जन कितना बदल गया है।

श्री लाला जगदलपुरी जी की कालजयी अनेक रचनाएँ हैं, अनेक संग्रह ,सम्मान निधियाँ हैं।

अमर यादों की धरोहर में लाला जगदलपुरी जिला ग्रंथालय जीवंत हुआ, सदैव के लिए स्वर्णांकित!

अमिट अनुभूतियों को सदैव हृदय में सँजोये,
'मन के राही को शत् –शत नमन!'
उनकी बिटिया का।

अमिता रवि दुबे
छत्तीसगढ़
मो–8435844508

स्मृतियों की धरोहर

हमारे जगदलपुर के गौरव आदरणीय लाला जगदलपुरी जी से मेरा कोई व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं था पर साहित्यिक कार्यक्रमों में हम सब उनसे मिलते और सीखते रहते थे। 1992 के इस आयोजन में जब लालाजी अपनी एक रचना प्रस्तुत कर रहे थे तो उनके चेहरे की माँस – पेशियाँ खिंची सी नज़र आती हैं। एक कवि, एक साहित्यकार किस कदर अपनी एक रचना में डूबता था इसका उदाहरण इस तस्वीर में नज़र आता है। इस तस्वीर में मैं मंच संचालन करते हुए उन्हें भावविभोर हो सुन रही हूँ। लाला जी को सुनना अर्थात् स्वयं को समृद्ध करना होता था। बस्तर की माटी ने ऐसे रत्नों को जन्मा है यह देख कर हम सब सदैव गौरवान्वित होते रहे हैं। लाला जी एक वटवृक्ष थे जिनकी छाँह तले हम सबकी कलम के अंकुर फूटने शुरु हुए थे।

सन् 2000 नवम्बर में मैं अपने पहले काव्य संग्रह डैडी के लोकार्पण के लिए जगदलपुर गई थी। 11 नवम्बर की सुबह मैं जगदलपुर पहुंची थी। डैडी का जन्मदिवस उस दिन ही था तो मन ने कहा कि लोकार्पण आज ही होना चाहिए। सुबह 7 बजे हिमांशु भैया को फोन किया और अपनी इच्छा बताई। इतनी जल्दी तैयारी कैसे होगी ? मुख्य अतिथि कौन होगा ? इस पर विचार किया गया। मैंने कहा मुझे तो लाला जी से ही लोकार्पण करवाना है। पता चला वे ज़्यादा निकलते नहीं और उनका आना मुश्किल है। मैंने भैया (हिमांशु शेखर झा और विजय सिंह) से कहा आप लोग सूत्र के बैनर में बाकी तैयारी करें। लालाजी से मैं स्वयं जाकर मिलूंगी और निवेदन करूंगी।

सुबह 10–11 बजे मैं उनके घर पर थी। प्रणाम कर निवेदन किया कि बिटिया की इच्छा का मान नहीं रखेंगे ? पिता को समर्पित है यह पुस्तक और मैं चाहती हूँ आप जैसे पितृ पुरुष ही इसका लोकार्पण करें। बेटी को भला कैसे मना करते। मुस्कुराकर 'हाँ' कह दिया और शाम को निर्धारित

समय पर स्थल पर उपस्थित थे लाला जगदलपुरी जी। उस समय की स्मृतियाँ ही आज पूँजी है मेरी। आदरणीय लाला जी ने आशीर्वाद का जो हाथ मेरे सिर पर रखा था वो क्षण अनमोल था। मुझे लगता है वही हमारी स्मृतियों की धरोहर है जो याद दिलाती है साहित्य के पथ पर सदैव उनके बताये मार्ग पर चलना है, पढ़ना है, लिखना है और सृजन करना है।

लाला जी को हृदय से नमन

रीमा दीवान चड्ढा
नागपुर
मो.–8208529489

लालाजी को जैसा मैंने देखा

साहित्य शिरोमणि श्रद्धेय लालाजी ने उत्कृष्ट साहित्य सृजन कर न सिर्फ संपूर्ण बस्तर को गौरवान्वित किया बल्कि हम बस्तर वासियों के मानस पटल पर अपनी एक अमिट छाप भी अंकित कर दी है। स्वभाव से बेहद सरल, सादगी पसंद, मन से निश्चल और सीधी सच्ची बात कहने वाले लाला जी का मन भी किसी बच्चे सा ही मासूम भोला भाला था। उनकी कविताओं की सरलता, सहजता व उनके अंतर्मन को ही प्रतिबिंबित करती दिखाई देती है।

वैसे तो आकाशवाणी में किसी रिकॉर्डिंग के दौरान या परिचर्चा में अक्सर उनका सानिध्य मिलता रहता। जहां हर बार उनसे कुछ न कुछ सीखने ही मिलता रहता। फिर कवि गोष्ठियों में भी उनका कविता पाठ हमें अभिभूत कर दिया करता। उनका मृदुल व्यवहार, निर्मल हंसी सबके लिए उदार भाव, हर किसी को पल भर में अपना बना लेता।

अपने पहले काव्य संग्रह को प्रकाशित करने के विचार से भूमिका लिखने के लिए जब मैंने उन से अनुरोध किया तो बड़ी ही आत्मीयता से न सिर्फ अपनी स्वीकृति दी बल्कि मेरी कविताओं को पढ़कर भावविभोर होते हुए मुझे अपनी बेटी ही बना लिया।

यह संबोधन मेरे लिए किसी उपलब्धि से कम न था। फिर तो जब समय मिलता मैं उनके अथाह ज्ञान सागर से कुछ अर्जित करने उनके पास जा पहुंचती। उनके पास बैठकर समय का कुछ पता ही नहीं चलता। अपनी कविताओं के कुछ अंश सुनाया करते। कविता की बानगी पर, बारीकियों को समझाया करते। अपने संग्रह से कुछ पुस्तकें भी देते रहते कभी–कभी। वह सब अब एक याद ही है। मेरे लिए उनका इतना स्नेह पाना मेरी बड़ी खुशकिस्मती रही। उनके जन्मदिन पर जब भी जाना होता उनकी प्रिय चॉकलेट ले कर जाती। जिसे देखकर उनके चेहरे पर एक बाल सुलभ हंसी बिखर जाती बिल्कुल किसी बच्चे की तरह।

मेरी कविताओं को उन्होंने न सिर्फ सराहा बल्कि उसमें निहित भावों को भी अपनी पारखी नजर से विश्लेषित कर नये अर्थ भी दिये मेरे काव्य संग्रह 'नीम अंधेरे' की भूमिका में। मेरा मन उनके प्रति सदा कृतज्ञ रहेगा इस उपकार के लिए।

आज जिला ग्रंथालय में लाला जी किसी बरगद के वृक्ष की तरह स्थापित हैं आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा बनकर। ऐसे साहित्य धर्मी लालाजी अपनी कृतियों में और हमारे दिलों में सदा अमर रहेंगे।

उन्हें और उनकी लेखनी को शत–शत नमन!

श्रीमती मोहिनी ठाकुर
लामनी, जगदलपुर
मो.–9424281825

लाला जी के साथ एक अविस्मरणीय दिन

लाला जगदलपुरी जी से मैं बहुत अधिक संपर्क में नहीं था क्योंकि मेरी रुचि साहित्य कविता की ओर न होकर बाल्यावस्था से ही संगीत की ओर ज्यादा थी। मैं 11 वर्ष की आयु से ही संगीत को पसन्द करने लगा और समय–समय पर शहर में आयोजित संगीत कार्यक्रमों में भाग लेने लगा।

दिनांक 22 जनवरी 1978 को जगदलपुर में आकाशवाणी केंद्र का शुभारंभ हुआ। जिसमें मैं लोक गायक, ग़ज़ल गायक के रूप में 'बी' क्लास का कलाकार रहा, लेकिन मैं यह अवश्य जानता था कि जगदलपुर शहर में लाला जगदलपुरी नाम से कोई व्यक्ति हैं जो हल्बी, छत्तीसगढ़ी तथा हिंदी में गीत, ग़ज़ल, रूपक, नाटक आदि लिखते हैं। उस समय जगदलपुर में टीवी नहीं था परंतु प्रतिदिन आकाशवाणी से बस्तर के लोकगीत नाटक, रूपक आदि का प्रसारण होता था और हम सुना करते थे। हां, आकाशवाणी जगदलपुर से प्रसारण हेतु मेरे बस्तर लोक गीत की रिकॉर्डिंग के दौरान लाला जी से एक या दो बार मेरी मुलाकात जरूर हुई थी और उन्होंने मेरे गाए गीतों को सराहा भी था।

22 जनवरी 1981 को आकाशवाणी जबलपुर के स्थापना दिवस पर मुझे मेरे दल के साथ मंच पर बस्तर लोकगीत प्रस्तुत करने हेतु आमंत्रित किया गया था। दर्शक दीर्घा में धोती कुर्ता और काला जैकेट पहने लाला जी बैठे थे। मेरे द्वारा मंच पर बस्तर का डंडारी गीत प्रस्तुत किया गया। बड़े ध्यान से लालाजी सुने और कार्यक्रम की समाप्ति उपरांत मुझे अपने पास बुलाया और खुश होकर मुझे आशीर्वाद भी दिया था। उस क्षण को और उस दिन को मैं कभी नहीं भूल सकता क्योंकि वह मेरे लिए अविस्मरणीय दिन था।

अब मुझे इस बात का दुख है कि मुझे लाला जी द्वारा लिखित हल्बी गीतों को गाने का सौभाग्य प्राप्त क्यों नहीं हुआ। मुझे इस बात का भी दुख है कि उस समय में कवि या साहित्यकार क्यों नहीं था।

विपिन बिहारी दाश
लालबाग, जगदलपुर, मो.–9424283915

लाला जी के साथ कुछ पल

लेखनी की शुरुआत कहाँ से करूँ संशय में हूँ। बात 1990 की है, कॉलेज के दिनों से कविता लेखन का शौक है। उन दिनों बस्तर की दो विभूतियों की चर्चा अधिकांश समाचार पत्रों में होती थी। एक थे डॉ0 जयदेव बघेल और दूसरे थे श्री लाला जगदलपुरी। साहित्य में रूचि होने के कारण लाला जी को देखने की प्रबल इच्छा होती थी। परन्तु बस्तर के सुदूर क्षेत्र चारामा से जगदलपुर आना संभव नहीं था। लाला जी की रचनाओं को समाचार पत्रों में पढ़ते हुए समय चक्र चलता रहा।

जुलाई 1993 में सरस्वती शिशु मंदिर जगदलपुर मे आचार्य के पद पर नियुक्ति पाने के उपरांत मन की इच्छा पूरी होने का आसान मार्ग मिल गया। गांव से निकल कर जगदलपुर मे आकर सरस्वती शिशु मंदिर में सेवारत हो लाला जी से मिलने की चाह बढ़ गयी। उस समय मेरे लिए समस्या यह थी कि मैं लाला जी को पहचानता भी नहीं था। किसी से संकोचवश पूछ भी नहीं पाता। जब चाह प्रबल हो तो राह अवश्य प्रदर्शित होती है। कुछ दिनों के बाद डोकरी घाट पारा में मकान किराया पर मिला। उसमें रहने के लिये आया तो एक मित्र ने कहा –'तुम्हारे लाला जगदलपुरी जी भी उसी मुहल्ले में रहते हैं। अब मिल लेना!' सुनकर मैं चौंक गया। तुरंत उनका पता पूछा तो बताया गया तुम जिस मकान में किराए पर हो उससे दो घर छोड़ कर तीसरा मकान लाला जी का है। अब प्रतिदिन विद्यालय जाते और आते समय देखता कि लाला जी के दर्शन हो जाएं। पर संयोग ही नहीं हुआ।

लाला जी से मुलाकात

प्रतिदिन सायं काल लाला जी पैदल हाथों में छतरी लेकर घूमने निकलते थे। कभी–कभी उनके घर वापसी के समय मैं विद्यालय से घर आता था। एक दिन मैं धोती कुर्ता पहने हुए विद्यालय से घर पैदल आ रहा था रास्ते में लाला जी घूमने जाते हुए दिख गये। संकरे रास्ते पर आमने–सामने होते ही मैंने आगे बढ़कर चरण छू लिए। ठिठक कर खड़े होते हुए लाला जी ने मेरे कंधे में हाथ फेर कर आशीर्वाद देते हुए कहा –'बेटा! मैंने तुम्हें पहचाना

नहीं, कौन हो तुम ? मेरी आंखों में अपने श्रद्धेय को सामने पाकर आंसू बह रहे थे। कृष्ण मंदिर के सामने खड़े होकर मुझसे मेरा परिचय लेने के बाद अपने घर आने को कहा। मेरा मन खुशी से झूम उठा। आने वाले रविवार का इन्तजार कर रहा था, जब मैं लाला जी के सानिध्य में कुछ पल व्यतीत कर सकूं। पर भक्त का भगवान से मिलने का समय नहीं आया था। रविवार को लाला जी को स्वास्थ्य की परेशानी के कारण आराम करने का सलाह थी।

दशहरा पर्व के समय लाला जी के घर साहित्य साधकों की बैठक हो रही थी। उनके घर के सामने से निकलते हुए मुझे काव्यपाठ की आवाज सुनाई दी। मैं डरा और सहमा सा अंदर प्रवेश किया। लाला जी के चरण स्पर्श कर और वहां उपस्थित सभी का हाथ जोड़कर सादर अभिवादन कर, नीचे दरी में बैठ गया। उक्त गोष्ठी में लाला जी के हम उम्र लोग थे। काव्य पाठ समाप्ति के बाद लाला जी ने मुझे अपने पास बुला कर सबसे परिचय करवाया –'ये शिशु मंदिर में आचार्य हैं।'

उन साहित्यकारों में श्री हुकुम चन्द जी भी थे जिनसे पहले परिचय हो चुका था। दो घंटे उनके बीच हास परिहास के साथ काव्यपाठ हुआ। अंत में मुझे कुछ सुनाने को कहा गया। उत्कृष्ठ साहित्य साधकों के बीच मैं सहमा सा था। मेरे मुंह से आवाज नहीं निकली। मैं प्रेम भाव की रचनाएँ लिखता हूं, इसलिए संकोच कर रहा था। मेरी लेखनी उतनी सशक्त नहीं थी कि मैं गोष्ठी में पाठ कर संकू। मैंने क्षमा मांगते हुए श्रीमती इंदिरा गांधी जी पर लिखी छोटी सी रचना का पाठ किया। सभी ने सराहा। मैंने लाला जी से पुनः मिलने की विनती करते हुए प्रस्थान करने की अनुमति प्राप्त कर चरण छुए। मेरे सिर में हाथ फेर कर आशीर्वाद देते हुए कहा –'अभी बहुत सीखना है पढ़ते रहा करो।'

यह आशीर्वचन प्राप्त कर मैं धन्य हो गया। मुझे तो पंख मिल गये और मैं अपने घर चला आया। आज तक मेरे स्मृति पटल में लाला जी के शब्द अंकित है। जब भी लेखनी कुछ लिखती है, लाला जी स्मरण में आ जाते हैं।

देवब्रत कर शर्मा
आवास पारा, जैसकर्रा, चारामा जिला कांकेर छ.ग.– 494337
मो.– 7587373238

लाला जगदलपुरी

तब मैं मिडिल स्कूल में पढ़ती थी, कांकेर के एसडीएम श्री संजीव बक्शी जी, जो पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी जी के नाती थे और श्री बहादुर लाल तिवारी, श्री सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, श्री शिवसिंह भदौरिया, डॉ नवाब संगत साहित्य परिषद् के आयोजन में लाला जगदलपुरी जी को बुलाया करते थे। पुत्री शाला में अक्सर यह आयोजन हुआ करता था। लाला जी बस्तर की संस्कृति, पहाड़ी मैंना और लोक जीवन पर अपनी कविताएँ सुनाया करते थे। मैं सबसे छोटी रचनाकार हुआ करती थी। उन दिनों आशीर्वाद और शाबाशी दिया करते थे लाला जी। उनकी वाणी में ओज था। बस्तर की संस्कृति को संजोए रखने की उत्कट इच्छा भी थी। वे सभी साहित्यकारों का सम्मान करते थे। बस्तर के साहित्यकारों के पितामह थे। उन्हें सत्– सत् नमन!

मीरा आर्ची चौहान
कांकेर, छग
मो.–9406108146

लाला जी बसे हृदय में पृ. क्र.–101

1 / अरण्यधारा–1
बस्तर क्षेत्र के कवियों की कविताओं का संकलन
2 / बस्तर मेरा देश
कहानी संग्रह–सनत कुमार जैन
3 / जीवन के मायने
कविता संग्रह–शशांक 'श्रीधर'
4 / विचार अपने–अपने
आध्यात्मिक आलेख संग्रह–जयचंद्र जैन
5 / अरण्यधारा–2
बस्तर क्षेत्र के कवियों की कविताओं का संकलन
6 / गीत गुंजन
कविता संग्रह–विमल तिवारी
7 / पत्तों भरी छांव
लघुकथा संग्रह–सनत कुमार जैन
8 / परवाज़ एक परिन्दे की
ग़ज़ल संग्रह–बरखा भाटिया
9 / यादें
कविता संग्रह–विपिन बिहारी दास
10 / रिश्तों की महक
कहानी संग्रह–पूर्णिमा विश्वकर्मा
11 / कथा कुंज
कहानी संग्रह–बस्तर क्षेत्र से जुड़े कहानीकारों की कहानियों का संग्रह
12 / सुनहरी धूप
लघुकथा संग्रह–सनत कुमार जैन
13 / महुआ मंजरी
कविता संग्रह–शकुन्तला शेंडे
14 / अरण्यधारा–3
देश के कवियों की कविताओं का संकलन
15 / अरण्यधारा–4
देश के कवियों की कविताओं का संकलन
16 / अर्धरात्रि का ज्ञान–1
व्यंग्य आलेख संगह–सनत जैन 'सागर'
17 / सहस्त्रधारा
कविता संग्रह–रजनी साहू
18 / तन्हाई
कविता संग्रह–विपिन बिहारी दाश
21 / मधु सागर
काव्य संग्रह–ममता जैन 'मधु'
22 / हाइकु कुंज
हाइकु संग्रह–सनज कुमार जैन
23 / जंगल
नाटक–सुरेन्द्र रावल
24 / कामायनी
नाटक–सुरेन्द्र रावल
25 / बस्तर के गांधी–पद्मश्री धर्मपाल सैनी
जीवन–चित्र–सनत कुमार जैन
26 / जीने की राह
आध्यात्मिक आलेख संग्रह–जयचंद्र जैन
27 / हम फिर चूक गये
व्यंग्य संग्रह–सुरेन्द्र रावल
28 / अरण्यधारा–5
बस्तर क्षेत्र के कवियों की कविताओं का संकलन
29 / अरण्यधारा–6
बस्तर क्षेत्र के कवियों की कविताओं का संकलन
30 / हाय ये बुढ़ढे
व्यंग्य संग्रह–सुरेन्द्र रावल
31 / हम फिर चूक गये
व्यंग्य संग्रह–सुरेन्द्र रावल
32 / मेरी विदेश यात्राएं
यात्रा वृतांत–सुश्री अनिता राज
33–जैन विवाह संस्कार
श्रीमती सरला जैन, श्रीमती ममता जैन
34–बालम की प्रेम कथा
व्यंग्य संग्रह–सुभाष पाण्डे

कमाने के और भी रास्ते हैं।
हम
आपका शौक
पूरा करते हैं।
आपकी साधना को
अंजाम तक पहुंचाते हैं।

लाला जी बसे हृदय में